विश्वज्योति विश्वाराध्य

(एकाङ्की रूपक)



कन्नड़ मूल

पी. एन. रुद्रप्पा

हिन्दी रूपांतरण

डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी

शोधप्रकाशन ग्रंथमाला — 72

॥ॐ नमः शिवाय॥

विश्वज्योति विश्वाराध्य

(एकाङ्की रूपक)

कन्नड़ मूल

पि.एन. रुद्रप्पा

हिन्दी रूपान्तरण एवं परिवर्धन

डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी

पूर्व आचार्य, संस्कृत-विभाग,

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,

वाराणसी

शैव भारती शोध प्रतिष्ठान

डी. 35/77, जङ्गमवाड़ी मठ, वाराणसी

प्रकाशक :
शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
डी. 35/77, जङ्गमवाड़ी मठ
वाराणसी-221001

प्रथम संस्करण : नवम्बर, 2014 ई.

ISBN : 978-93-82639-12-1

मूल्य रु. 100/-

मुद्रक :
मित्तल आफसेट
कौशलेश नगर
सुन्दरपुर, वाराणसी

।। ॐ नमः पञ्चजगद्गुरुभ्यः ।।

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के संस्थापक

श्रीकाशीविश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर

श्री १००८ श्री डॉ चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी का



आशीर्वचन

'विश्वज्योति विश्वाराध्य' नामक नाटक का मूल कन्नड में श्री पी. रुद्रप्पा के द्वारा लिखा गया है। जिसका अनुवाद डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी जी ने किया है। यह मूलतः कन्नड़ में लिखा हुआ था जिसका हम हिन्दी में अनुवाद कराकर हिन्दी भाषियों के लिए सुलभ कराना चाहते थे। इस कृति की चर्चा हमने डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी जी से की तो उन्होंने प्रथम बार में ही इस नाटक में रुचि दिखाई और इस नाटक का हिन्दी रूपांतरण करने का बिडा उठायी। इस कृति को वे अल्प समय में ही कन्नड़ से हिन्दी में अनुवाद कर दिया। कन्नड़ भाषा में होने के कारण इस कृति का हिन्दी भाषी डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी जी के लिए एक मुश्किल भरा कार्य था मगर उन्होंने इसे बड़ी सरलता से निभाया।

भारतीय धर्मपरम्परा में वीरशैव धर्म एक सनातन धर्म माना जाता है। इस धर्म के संस्थापक पाँच आचार्य हैं। उन्हें श्रीजगद्गुरु पञ्चाचार्य कहा जाता है। 'विश्वज्योति विश्वाराध्य' एक वीरशैव धर्म रमणीय मनोहारी नाटक है। उससे जिज्ञासु लोगों की जिज्ञासा का प्रचुर मात्रा में समाधान हो सकेगा। भारतीय धर्मदर्शनों में वीरशैव धर्मदर्शन का एक विशिष्ट स्थान है। काशी पीठ के जगद्गुरु विश्वकर्णाचार्य जी ने महर्षि दुर्वासा को पञ्चवर्ण-महासूत्र का उपदेश दिया।

'काव्येषु नाटकं रम्यम्' काव्यों में नाटक रमणीय होता है। वस्तुतः कविकर्म सामान्य रूप से दो प्रकार का होता है— दृश्य और श्रव्य। श्रव्य में दृश्यत्व नहीं होता किन्तु दृश्य में श्रव्यत्व होता है। यहाँ कारण है कि श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य सहृदयों को झटिति आनन्द प्रदान करने से अधिक रमणीय सिद्ध होता है। आचार्य भरत ने नाटक को सर्वजन के लिए 'एकं समाराधनम्' कहा है और अद्वितीय नाट्यशिल्पी महाकवि कालिदास ने इसे 'चाक्षुषु क्रतु' की अभिख्या प्रदान की है।

नाटक की मूल कथावस्तु प्रसिद्ध वीरशैवसम्प्रदाय तथा काशीस्थ जङ्गमवाड़ी मठ पर केन्द्रित है। इसके प्रणयन का उद्देश्य वीरशैव धर्म की पवित्र मूल भावना तथा जङ्गमवाड़ी मठ की जनकल्याणकारी प्रवृत्तियों का कान्तासम्मित उपदेश करना है। साथ ही, इसके कथानक से कतिपय ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक तथ्यों का नूतनोद्घाटन भी है। यथा— मठ-मन्दिरों के ध्वस्तीकरण में औरङ्गजेब की पराजय तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यायल की स्थापना में भूमिदान।

प्रस्तुत 'विश्वज्योति विश्वाराध्य' एकाङ्की नाटक मूल कन्नड कृति का हिन्दी अनुवाद है। अनुवाद डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी एक योग्य प्राध्यापक होने के साथ-साथ संस्कृत और हिन्दी के समर्थ साहित्यकार हैं। उन्होंने इस लघु नाटक का अतीव ललित और भावपूर्ण अनुवाद किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने पूज्य महास्वामीजी की प्रेरणा तथा सत्परामर्श से मूल नाटक का परिष्कार एवं कई नवीन दृश्यों और वृत्तों की योजना भी की है। इससे यह अनूदित नाट्य कृति मूल की अपेक्षा चारुतर और ग्राह्यतर हो गयी है। पुरुष पात्र प्रधान यह एकाङ्की नाटक सर्वथा अभिनेय है। दृश्य योजना और संवादों की प्रभावोत्पादकता के कारण यह सहृदय प्रेक्षकों का परितोष करने में समर्थ है। अनुपम पदशय्या तथा अर्थगाम्भीर्य इसकी साहित्यिकता में हृद्यानवद्य रसायन घोल रहे हैं।

हम कामना करते हैं कि डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी स्वस्थ रहकर आजीवन संस्कृत और हिन्दी साहित्य की सेवा करते हुए राष्ट्रिय साहित्य की समृद्धि में योगदान देते रहे। उसी प्रकार हमारी आकांक्षा है कि भगवान् विश्वनाथ माता अन्नपूर्णा एवं श्री जगद्गुरु विश्वाराध्यजी की असीम कृपा आपके समस्त परिवार के ऊपर सदैव बनी रहे।

इस ग्रंथ के मुद्रण कार्य में अपना अमूल्य योगदान के दिये हुए चिदानन्द ओ. हिरेमठ (खसगी) तथा डॉ. जी. सी. केण्डदमठ को अनंत मगंलाशीर्वाद।

दि. १८.११.२०१४

इत्याशीषः



पूर्व पीठिका

मानवकुल के कल्याण के लिए श्रीजगद्गुरु पञ्चाचार्यों ने प्राचीनकाल में ही वीरशैव धर्म की स्थापना की। इस मत का शिवाद्वैत-सिद्धान्त-ज्ञानामृत हमें भाष्य के रूप में प्राप्त है। यही कारण है कि ये आचार्य दार्शनिक पितामह के रूप में सुपूजित हुए। इनके द्वारा प्रवर्तित और प्रतिष्ठित वीरशैव मत में कोई जाति-भेद नहीं है। इस धर्म में धनी-निर्धन, ऊँच-नीच या पण्डित-पामर जैसा कोई भेदभाव नहीं है। इससे इस धर्म की मानवीयं संवेदनशीलता और भ्रातृत्व भावना का सम्यग्बोध होता है।

भारत वर्ष के प्राचीनतम पुण्यक्षेत्रों में काशी का अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। पञ्चपीठों में से एक 'ज्ञानपीठ-सिंहासन' इसी काशपुरी में अवस्थित है। आगमों के अनुसार, शिव के ईशानमुखसञ्जात स्कन्दगोत्राधिपति, विश्वकर्ण शाखाधिपति श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य भगवत्पाद, इस धराधाम को पवित्र करने हेतु प्रत्येक युग में अवतरित होते हैं। काशीस्थ 'ज्ञानपीठ-सिंहासन' के द्वापर युग के आचार्य श्री जगद्गुरु विश्वकर्ण शिवाचार्य भगवत्पाद ने महान् तपस्वी महर्षि दुर्वासा को तत्त्वोपदेश किया था। जहाँ वह तत्त्वोपदेश हुआ था, वर्तमान काल में वही स्थान काशीस्थ जङ्गमवाड़ी मठ के अन्तर्गत 'ज्ञानपीठ' के नाम से विख्यात है।

इस पीठ के **कलियुगाचार्य** श्रीजगद्गुरु विश्वाराध्य जी महाराज ने युगारम्भ में वीरशैवधर्म की स्थापना करने के लिए श्री काशी विश्वनाथज्योतिर्लिङ्ग से अवतरित होकर ग्यारह सौ वर्षों तक अनेक लीलाएँ करते हुए समस्त उत्तर भारत का परिभ्रमण किया। इस प्रकार उन्होंने वीरशैव-सिद्धान्त का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। अन्ततः, वे अपने शिष्य श्रीजगद्गुरु मल्लिकार्जुन विश्वाराध्य शिवाचार्य को ज्ञानपीठाधिकार प्रदान करके श्री काशी विश्वनाथज्योतिर्लिङ्ग में समरस हो गए। तत्पश्चात् नूतन ज्ञानपीठाधीश्वर श्री 1008

जगद्गुरु मल्लिकार्जुन विश्वाराध्य शिवाचार्य जी ने अपने शिवयोगसामर्थ्य से तीन सौ ग्यारह वर्षों तक निरन्तर धर्म-प्रचार किया। महामहनीय पुण्यविग्रह श्री 1008 जगद्गुरु मल्लिकार्जुन विश्वाराध्य शिवाचार्य जी के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी सभी सतहत्तर (77) पूज्य श्रीजगद्गुरुमहानुभावों को उन्हीं के नामोपाधि से विभूषित किया गया है।

श्रीकाशी जङ्गमवाड़ी मठ की केवल एक पौराणिक गाथा ही नहीं है अपितु इसके अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रमाण भी उपलब्ध हैं। पाँच सौ चौहत्तर (574) ई. में काशी के राजा जयनन्ददेव ने जङ्गमवाड़ी मठ के लिए भूमि दान कर 'महाशासन' लिखवाया। जङ्गमवाड़ी मठ से वही भूमि प्राप्त करके पं. मदनमोहन मालवीय ने उन्नीस सौ सोलह (1916) ई. में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की। श्रीपीठ के इक्यावनवें पीठाधीश्वर श्री जगद्गुरु मल्लिकार्जुन विश्वाराध्य शिवाचार्य जी को भूमि दान कर नेपाल के राजा श्री विश्वमल्ल उनके परमभक्त बन गए। आज भी वह दानपत्र (शासन) नेपाल के भक्तपुर (जङ्गमवाड़ी मठ) में शिलालेख के रूप में सुरक्षित है। मैसूर के महाराज श्री कृष्णराज वडेयर ने उन्यासीवें श्रीजगद्गुरु हरीश्वर शिवाचार्य जी का अभिनन्दन किया और काशी क्षेत्र में संस्कृत की उच्चशिक्षा प्राप्त कर रहे ग्यारह माहेश्वरों के प्रसाद की व्यवस्था की। उन्होंने 1846 ई. में दानपत्र लिखकर प्रतिवर्ष अपने जन्मदिन के शुभ अवसर पर धनराशि भेजने की व्यवस्था की। केलदी संस्थान के राजवंश, कोडगु के राजा काशी-श्रीपीठ के परम भक्त बन गए थे। मध्यप्रदेश के मैहर के राजा भी दानपत्र लिखकर इस मठ के भक्त बन गए थे। मुगलबादशाहों द्वारा इस पीठ के उत्थान के लिए किए गए भूदान से सम्बद्ध लेख आज भी काशी-श्रीपीठ में उपलब्ध हैं।

काशी जङ्गमवाड़ीमठ के चौरासीवें पीठाधीश्वर श्रीवीरभद्रशिवाचार्य महास्वामी जी, वैदुष्य के अवतार और प्रकाण्ड पण्डित थे। इनके कार्यकाल में इस मठ के अन्तर्गत विद्वत्सङ्घ, ज्ञानमन्दिर, संस्कृत-विद्यालय, गुरुकुल आदि स्थापित हुए। पचासीवें श्री जगद्गुरु विश्वेश्वर शिवाचार्य जी ने पुणे, औरंगाबाद, नागपुर और मंगलवेडा में 'विद्यार्थीनिलयम्' और यात्रीविश्रामगृह का निर्माण कराया। उन्होंने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में वेदान्त विभाग के अन्तर्गत शक्ति-विशिष्टाद्वैत वेदान्तशाखा की स्थापना करायी। वर्तमान में, छियासीवें पीठाधीश्वर श्रीजगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी महाराज, पूज्य पूर्वाचार्य की प्रेरणा से श्रीपीठ की सर्वविध अभ्युन्नति के लिए निरन्तर कार्यरत हैं। वे सतत विद्याप्रसार के साथ ही इस पीठ की गरिमा के नित्य सवंर्धन हेतु सचेष्ट हैं। महास्वामी जी महाराज कन्नड़, संस्कृत, हिन्दी और मराठी भाषा-साहित्य के विद्वान् अध्येता और उच्चकोटि के दर्शन-विज्ञाता हैं। ये महानुभाव पीएच.डी. और डी.लिट्. उपाधियों से विभूतिषत हैं। आप काशी की आध्यात्मिक विभूतियों में सम्मानित स्थान रखते

हैं। आपके सत्प्रयत्न से ही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में वीरशैवागम-अध्ययनपीठ का आरम्भ हुआ है। उदारचेता महास्वामीजी कई संस्थाओं के संरक्षक हैं और आपके सार्थक आशीर्वाद से अनेक संस्थाएँ अपने कार्यक्रम चला रही हैं। आपके पावन संरक्षण में जङ्गमवाड़ी मठ का ज्ञानपीठ सर्वतोभावेन उत्कर्ष को प्राप्त कर रहा है।

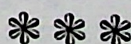
ऐसी भव्य आध्यात्मिक परम्परा से जुड़े हुए जगद्वन्द्य विभूतिवैभवविभूषित परमपावन-अचिन्त्य-चरित्र-चरितोल्लसित कीर्तिकेतु धर्मसेतु, महानुभाव-दिव्यावतार महनीयकीर्तिशाली महापुरुषों के दिव्य दर्शन प्राप्त करना-कराना ही इस रचना का प्रयोजन है। जगत् की सृष्टि, पालन और संहार जिनकी नित्य-लीला का अङ्ग है- ऐसे आशुतोष देवाधिदेव भगवान् विश्वनाथ को कोटि-कोटि नमस्कारपूर्वक मैं जङ्गमवाड़ी मठ के वर्तमान ज्ञानपीठाधीश्वर पूज्य श्रीजगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी महाराज के चरणों में भूयोभूयः प्रणाम करता हूँ जिनकी सत्प्रेरणा और प्रोत्साहन से ही इस लघु किन्तु गौरवशाली अभिनेय एकाङ्की रूपक की पुनारचना सम्भव हो सकी। उन्होंने मुझे अत्यन्त स्नेहपूर्वक रूपक की निर्मिति में उपयोगी और प्रामाणिक (तथ्यपरक) सामग्री सुलभ करायी। उनका कृपाप्रसाद मेरे लिए कल्याणप्रद पाथेय बने- यही ईश्वर से प्रार्थना है।

इस प्रयतकार्य में मुझे प्रवृत्त करने वाले, तन्त्रागम के नदीष्ण विद्वान्, महनीयकीर्ति, शैवभारती-शोध प्रतिष्ठान के पूर्व निदेशक स्व. श्रद्धेय प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी की पुण्यस्मृति को प्रणाम करता हूँ। ततश्च, अपने श्रद्धेय गुरुदेव प्रो. अमरनाथ पाण्डेय जी के श्रीचरणों में प्रणति-तति निवेदन करता हूँ। प्रिय डॉ. विनोद राव पाठक तथा डॉ. तरुण कुमार द्विवेदी को शुभाशीष प्रदान करता हूँ। शैवभारती शोध प्रतिष्ठान एवं मठ के समस्त अधिकारियों के प्रति, प्रकाशन सहयोग के लिए, हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। अन्ततः इस लघुरूपक के पठन-श्रवण-दर्शन से अपने को पुण्यभागी बनाने वाले समस्त श्रद्धालु पाठकों-दर्शकों की नित्य मङ्गलकामना करता हूँ। तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।इति शम्।।

।।विश्वज्योतिः विश्वाराध्यः।।

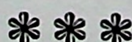
प्रभुनाथ द्विवेदी

वाराणसी
निर्जला एकादशी
दि. 9 जून, 2014 ई.



विषयानुक्रमणिका

विश्वज्योति विश्वाराध्य



॥ॐ नमः शिवाय॥

विश्वज्योति विश्वाराध्य

(एकाङ्की रूपक)

प्रथम दृश्य - 01

स्थान – कैलास

(परदा क्रमशः उठता है और इसके साथ ही रङ्गमञ्च पर धीरे-धीरे हल्का प्रकाश फैलता है। रङ्गमञ्च के मध्य में भगवान् शिव और भगवती उमा सहजभाव से विराजमान हैं। उनके दाहिनी ओर नन्दी, भृङ्गी, शृङ्गी आदि गण तथा बाँयीं ओर पञ्चगणाधीश हाथ जोड़े हुए प्रणाम-मुद्रा में प्रसन्नचित्त खड़े हैं। ऐसे परिदृश्य में विद्युत् की खनकती ध्वनि के साथ दशविध सङ्गीतवाद्यों की साज (धुन) पर 'ॐ-ॐ-ॐ-जय-जय-ॐ-ॐ' का समवेत मधुर-गम्भीर स्वर उभरता है। नृत्य प्रारम्भ होता है।)

ॐ जय...जय...जय...जय,
शम्भो! महादेव!! हर-हर।
ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय। ॐ...ॐ...ॐ...ॐ॥
नटेश्वर-महेश्वर-शिवशङ्कर,
ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय। ॐ...ॐ...ॐ...ॐ॥
परमेश्वर अभयङ्कर त्रिशूलेश्वर,
गजचर्माम्बरधर चन्द्रमौलीश्वर,
शशिभूषण हर प्रभु शङ्कर।
ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय। ॐ...ॐ...ॐ...ॐ॥
नन्दीवाहन जय जय महेश्वर,

सर्पभूषण जय जय महेश्वर,
डमरूधारी जय जय महेश्वर,
ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय। ॐ...ॐ...ॐ...ॐ॥

(ॐकार की ध्वनि क्रमशः मन्द होती है। नृत्य समाप्त होने के साथ ही रङ्गमञ्च के मध्य में विराजमान भगवान् शिव और देवी पार्वती पूर्णतः प्रकाशमान हो जाते हैं)

पार्वती - परमेश्वर! आज कैलास पर्वत का सिंहासन दिव्य तेज से जगमगा रहा है न! प्रभो! क्या बात है? आप कुछ बोल क्यों नहीं रहे हैं? क्या मेरी बातें आप नहीं सुन रहे हैं? आप क्या सोच रहे हैं? क्या कोई गम्भीर चिन्तनीय विषय है?

शिव - देवि गिरिजे! भक्तों की सत्कामनायें पूरी करने के अलावा हमारे पास है ही क्या? देवि! सुन रही हो न! भू-देवी की चीत्कार सुनाई दे रही है। हमें इसका कारण और निवारण दोनों ही खोजना पड़ेगा।

पार्वती - देवाधिदेव! महेश्वर!! क्या वसुन्धरा ऐसी दुर्दशा को प्राप्त हो गयी है? हर ओर हाहाकार मचा हुआ है। आचार-विचार में मेल नहीं है, धम-अधर्म में भेद नहीं रह गया है। श्रद्धा-सम्पन्न और सज्जन को तरह-तरह की कठिनाइयाँ झेलनी पड़ रही हैं।

(सहसा अस्तव्यस्त वेशभूषा में पर्दा हटाये बिना रङ्गमञ्च पर भूदेवी का प्रवेश होता है। प्रकाश मन्द होते ही भू-देवी का क्रन्दन)

भूदेवी - प्रभो! कैलासपते!...विश्वनाथ! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो।

पाहि मां हे विश्वेश्वर।
रक्षा करो हे परमेश्वर॥
भूलोक अशान्ति से घिरा हुआ है,
अधर्म अन्धविश्वास बढ़ा हुआ है।
न्याय, नीति, सम्मान लुप्त हो गया,
सज्जनों का क्रन्दन और बढ़ रहा है॥
प्रकृति का शृङ्गार अब लुप्त हो रहा,
आश्रम-परिसर मल-लिप्त हो रहा।
अनाचार ऊँचे चढ़ नाच रहा है,
मानव कुल विनाश-मंत्र बाँच रहा है॥

नाथ! कृपासिन्धो!! हे जय-जय प्रभो!
मेरा उद्धार करो जय-जय प्रभो!!

(भू-देवी का आर्तस्वर बन्द हो जाता है। रङ्गमञ्च पर पुनः कैलास पर्वत का दृश्य आलोकित होता है।)

शिव - लोकमातः! आपने भूदेवी का क्रन्दन सुना?

पार्वती - सुना देव! सुना। चन्द्रमौले! क्या कारण है इस करुण क्रन्दन का?

शिव - इस समय भूलोक पर घोर अनाचारवश जाति-मत-पन्थों का आडम्बर बहुत बढ़ गया है। मानव वंश के चरित्र बल का निरन्तर ह्रास हो रहा है। उसमें स्वार्थान्धता बढ़ती ही जा रही है। इसलिए यह भू-देवी इनके भार से सन्त्रस्त है और अपनी रक्षा के लिए आर्तस्वर में पुकार रही है।

पार्वती - सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान- इन आपके मुखों से प्रकट होकर एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर, चतुरक्षर और पञ्चाक्षर भगवत्पाद कृतयुग के आदि में वीरशैव मत की स्थापना करके त्रेता युग के आरम्भ में एकवक्त्र, द्विवक्त्र, त्रिवक्त्र, चतुर्वक्त्र और पञ्चवक्त्र भगवत्पाद के रूप में धर्म की ज्योति जला चुके हैं, अब इस द्वापर युग में...

शिव - हाँ-हाँ, इसीलए पञ्चगणाधीश...

(शिव के इतना कहते ही सभी पाँचों गणाधीश एक-एक करके आकर हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं।)

पञ्चगणाधीश - *(एक स्वर में)* हे जगन्नाथ! हे जगज्जननि!! आपको बार-बार प्रणाम। भगवन्! हमारे लिए क्या आदेश है?

शिव - रेणुक, दारुक, घण्टाकर्ण, धेनुकर्ण, विश्वकर्ण; हे पाँचों गणाधीश! इस समय भूलोक में सर्वत्र अधर्म व्याप्त है। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। मानव जाति पतन के गर्त में जा रही है। उसका उद्धार करके उत्थान करना है। वीरशैव धर्म की स्थापना करने के लिए तुम्हें भूलोक जाना होगा। वहाँ जाओ और वीरशैव के तत्त्वत्रय, अष्टावरण, पञ्चाचारों और षट्स्थलों का पुनः बोध कराओ।

पञ्चगणाधीश - फिर वीरशैवधर्म...?

शिव - हाँ,...अब त्रेतायुग समाप्त हो गया। द्वापर युग का आरम्भ हो चुका है। अतः वीरशैवधर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए तुम्हें भूलोक में अवतरित होना है।

रेणुक - जगदीश्वर! हमारे अवतारों के लिए उपयुक्त स्थानों का सङ्केत करने की कृपा करें। भगवन्! आदेश दीजिए कि वहाँ हमें क्या करना है?

शिव - *(प्रसन्न मुद्रा में)* बहुत अच्छा! बतलाता हूँ, ध्यान से सुनो।

गणाधीश रेणुक! तुम आन्ध्र देश के कोल्लिपाक के सोमेश्वर लिङ्ग से प्रादुर्भूत होकर श्रीप्रसन्नरेणुकाचार्य नाम धारण कर मलयाचल में श्री वीरसिंहासन की स्थापना करो। *(रेणुक आगे सम्मुख आकर हाथ जोड़कर सिर झुकाकर आज्ञा शिरोधार्य करते हैं)।*

गणाधीश दारुक! तुम मध्यदेश के उज्जयिनी वटक्षेत्र के श्रीसिद्धेश्वर लिङ्ग से प्रादुर्भूत होकर दारुकाचार्य नाम धारण करो और उज्जयिनी में सद्धर्मसिंहासन की स्थापना करो।

(दारुक आगे बढ़कर सम्मुख आकर आज्ञा शिरोधार्य करते हैं)

गणाधीश घण्टाकर्ण! तुम द्राक्षाराम क्षेत्र के भीमनाथलिङ्ग से प्रादुर्भूत होकर घण्टाकर्णाचार्य नाम धारण कर हिमालय के केदार क्षेत्र में वैराग्यसिंहासन की स्थापना करो।

(घण्टाकर्ण सम्मुख आकर आज्ञा शिरोधार्य करते हैं)

गणाधीश धेनुकर्ण! तुम आन्ध्रदेश के श्रीमल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिङ्ग से प्रादुर्भूत होकर धेनुकर्णाचार्य के रूप में श्रीशैलक्षेत्र में सूर्यसिंहासन की स्थापना करो।

(धेनुकर्ण सम्मुख आकर आज्ञा शिरोधार्य करते हैं)

गणाधीश विश्वकर्ण! तुम उत्तरभारत के श्रीकाशीविश्वनाथ ज्योतिर्लिङ्ग से प्रादुर्भूत होकर विश्वकर्णाचार्य नाम धारण कर काशी क्षेत्र में ज्ञानसिंहासन की स्थापना करो।

(विश्वकर्ण सम्मुख आकर आज्ञा शिरोधार्य करते हैं)

इन सभी पाँचों पीठों की प्रतिष्ठा से वह धराधाम भक्ति, ज्ञान और वैराग्यमय धर्माचरण से पवित्र हो जायेगा। तुम सब इस प्रकार लोककल्याण करते हुए विश्ववन्द्य बनकर जगद्गुरु के रूप में ज्योति जगाओ। वीरशैव धर्म की गरिमा-महिमा का संरक्षण-संवर्धन

करो। भूमण्डल पर भ्रमण करते हुए धर्मलीलाएँ करो। अन्ततः माहेश्वरवंशसम्भूत योग्य निष्ठावान् शिष्यों को अपने पीठों पर प्रतिष्ठित करके कैलास पर मेरी सन्निधि में आ जाओ।।

(पञ्चगणाधीश सामूहिक रूप से श्रद्धापूर्वक शिव-पार्वती को सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं। प्रकाश धीरे-धीरे कम होता है और परदा गिरता है।)

।। प्रथम दृश्य सम्पन्न ।।

***

द्वितीय दृश्य - 02

(रङ्गमञ्च पर क्रमशः धीरे-धीरे पूर्णतः प्रकाश छा जाता है। मध्य में एक बृहदाकार शिवलिङ्ग स्थापित है। मन्द और मधुर (पुरुष) स्वर में श्लोक पाठ होता है)

एते युगचतुष्केषु पञ्चाचार्याः यथाविधि।
मम लिङ्गमुखोद्भूता लोकविश्रुतकीर्तयः॥

(प्रत्येक पञ्चाचार्य को अलग-अलग रंग के प्रकाश से उनके अपने लाञ्छनों से सुसज्जित किया गया है। श्लोकपाठ आरम्भ होने के साथ ही क्रमशः वे शिवलिङ्ग से प्रकट होकर 'आचार्यमूर्ति' बनकर वहाँ से निकल जाते हैं।)

अथ त्रिलिङ्गविषये कुल्यपाकाभिधे स्थले।
सोमेश्वरमहालिङ्गात् प्रादुरासीत् स रेणुकः॥

. *(श्लोकपाठ समाप्त होते ही शिवलिङ्ग से जगद्गुरु श्रीरेणुकाचार्य प्रकट होकर निकल जाते हैं। इसी प्रकार आगे अन्य आचार्य भी-)*

महोत्तरे वटक्षेत्रे स्थाने उज्जयिनीपुरे।
सिद्धेशलिङ्गतो जन्म दारुकस्य जगद्गुरोः॥

(जगद्गुरु श्रीदारुकाचार्य...)

द्राक्षारामाख्यसुक्षेत्रे भीमनाथाख्यलिङ्गतः।
घण्टाकर्णस्य चोत्पत्तिरावासस्तु हिमालये॥

(जगद्गुरु श्रीघण्टाकर्णाचार्य...)

सुधाकुण्डाख्यसुक्षेत्रे मल्लिकार्जुनलिङ्गतः।
जन्म श्रीधेनुकर्णस्य निवासः श्रीगिरौ शिवे॥

(जगद्गुरु श्रीधेनुकर्णाचार्य...)

काश्यां विश्वेशलिङ्गाच्च विश्वकर्णस्य चोद्भवः।
काशीक्षेत्रं सदास्थानं शृणु पार्वति सादरम्॥

(जगद्गुरु श्रीविश्वकर्णाचार्य...)

(प्रकाश धीरे-धीरे कम होता है। परदा गिरता है।)

॥ द्वितीय दृश्य सम्पन्न ॥

***

तृतीय दृश्य - 03

(कड़कती हुई बिजली की आवाज के साथ आकश में एक नक्षत्र दिखाई देता है। उससे निकल कर एक ज्योति धरातल पर उतरती है और इसके साथ ही माङ्गलिक वाद्यों की ध्वनि गूँजती है। रंगमंच पर अन्धकार छाया है, केवल वह नक्षत्र चमक रहा है। उस ज्योति के धरातल पर पहुँचते ही लिङ्गाङ्कित शिवरूपी जङ्गम दृश्य होता है। श्रीदेवी, भूदेवी सहित समूह नृत्य-)

हे विश्व चेतन!
हे दिव्य चेतन!!
ज्योतिर्मय हे महाज्योति
सब जगह उजाला भरने आ!
भवभयहारक श्रीविश्वकर्ण!
धरती पर लीला करने आ!!
आदि जगद्गुरु बनकर आ!
शान्ति विश्व की लेकर आ!
मानवधर्म साथ हो तेरे,
धरती पर लीला करने आ!!
विश्ववन्द्य गुरु विश्वकर्ण हे!
ज्ञान की गङ्गा बहाने आ!
जीवन्मुक्ति दिलाने आ!
धरती पर लीला करने आ!!
शिवस्वरूप हे परम कारुणिक!
सब प्रकाशमय करने आ!
दिव्य ज्योति फैलाने आ!
धरती पर लीला करने आ!!
भवभयहारक श्री विश्वकर्ण!
धरती का भार हटाने आ!
जीवन का तिमिर मिटाने आ।!
धरती पर लीला करने आ!!

(मञ्च पर से प्रकाश धीरे-धीरे गायब हो जाता है। परदा गिरता है।)

॥ तृतीय दृश्य सम्पन्न ॥

***

चतुर्थ दृश्य - 04

(काशिराज दिवोदास का शयनकक्ष। राजा दिवोदास और उनकी रानी निद्रावस्था में हैं। पार्श्व संगीत की मन्द मधुर ध्वनि सुनायी पड़ रही है और मञ्च पर हलका (शयन योग्य) प्रकाश है।)

दिवोदास - *(नींद में ही)* शिव-शिव-प्रभु-महादेव! शिव-शिव-प्रभु-महादेव!।

रानी - *(जागी हुई सी)* अरे यह क्या? महाराज नींद में ही शिवनाम स्मरण कर रहे हैं।

दिवोदास - *(प्रसन्न मुख, भावपरवश होकर)* अहा! कैसा मङ्गल रूप है यह!! कैसा दिव्य तेज!! हे जगदीश, हे विश्वनाथ! रक्षा करो प्रभो! मेरी रक्षा करो!!

रानी - *(राजा को प्रबोधित करते हुए)* स्वामिन्! क्यों, क्या हुआ?

दिवोदास - *(जागने का अभिनय करते हुए, साश्चर्य)* आँ...?

रानी - महाराज! इस अमृत घड़ी में क्या आपने कोई स्वप्न देखा? क्या बात है? कृपा करके कुछ बताइये तो सही!

दिवोदास - ऐसा? क्या कह रहा था मैं?

रानी - शिव-शिव-महादेव-। कुछ ऐसा ही।

दिवोदास - हाँ-हाँ, महारानी, ठीक है। मैंने एक शुभ स्वप्न देखा है। देवि, श्रीकाशी विश्वनाथ ज्योतिर्लिङ्ग से एक दिव्य देहधारी प्रकट हुए हैं। वे इष्टलिङ्गधारी हैं। एक हाथ में दण्ड और दूसरे में कमण्डलु धारण किए हुए हैं। वे अपने तेज से कोटि सूर्य के समान देदीप्यमान हैं। वे तेजोमूर्ति साक्षात् शिव ही हैं। वंशपरम्परा से हम जो श्रीकाशी विश्वनाथ का श्रद्धाभक्तिपूर्वक पूजन कर रहे हैं, उसका सुफल हमें इस दिव्यदर्शन से प्राप्त हो गया। देवि, आज शुभ दिन है, महाशिवरात्रि का पावन पर्व है। आज भगवान् विश्वेश्वर की विशेष पूजा करेंगे। स्वामी के कृपापात्र बनेंगे, उन्हें प्रसन्न करेंगे। चलो, उठो। हम तैयार होकर शीघ्र प्रस्थान करेंगे।

रानी - महाराज, हम अपनी भक्त प्रजा को भी आमंत्रित करेंगे। वे भी हमारे साथ प्रभु का प्रसाद पायें, स्वामी के कृपापात्र बनें।

दिवोदास - देवि, हम मान गए। तुम्हारा विचार अभिनन्दनीय है। भगवत्पूजा का विशेष फल हमारी धर्मप्राण प्रजा को प्राप्त हो। काशी के समस्त भक्तजन पुरजन पुण्य के भागी बनें। तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु। हर हर महादेव!!

(प्रकाश धीरे-धीरे समाप्त होता है। परदा गिरता है।)

॥ चतुर्थ दृश्य सम्पन्न ॥

***

पञ्चम दृश्य - 05

काशी विश्वनाथ मन्दिर

(रङ्गमञ्च के मध्य शिवलिङ्ग विराजमान है। भक्त पुरजन एकत्र हैं। सर्वत्र श्रद्धा का भाव परिलक्षित हो रहा है। अर्चकगण पूजन की तैयारी में लगे हैं। महाराज दिवोदास और महारानी का प्रवेश होता है। सेवकगण साथ में पूजन की सामग्री लिए पीछे चल रहे हैं। शिवलिङ्ग के सम्मुख पहुँच कर महाराज और महारानी पुष्प समर्पित करते हैं। मंत्रोच्चार और घण्टा-घड़ियाल की ध्वनि। महाराज और महारानी वहीं हाथ जोड़कर विनीत भाव से खड़े हो जाते हैं। शिवलिङ्ग के ऊपर उज्ज्वल प्रकाश। सहसा ज्योतिर्लिङ्ग से दिव्य तेजःपुञ्ज जगद्गुरु श्रीविश्वकर्णाचार्य प्रादुर्भूत होते हैं।)

दिवोदास - *(सहसा)* महान् आश्चर्य! विश्वनाथ के ज्योतिर्लिङ्ग से यह कैसी दिव्य ज्योति? यह देवालय तो अपूर्व प्रकाश से जैसे नहा उठा है। हे विश्वनाथ! प्रभो दीनानाथ!!

जनसमूह - *(समवेत स्वर में)* शम्भो, हर-हर महादेव! शम्भो हर-हर महादेव!! शम्भो हर-हर महादेव!!

दिवोदास - *(आश्चर्य और प्रसन्नता का भाव प्रदर्शित करते हुए)* वही हरिद्रा-पीत-वर्ण, ध्वज सहित बिल्वदण्डधारी शिवरूप! जिसे मैंने आज ही स्वप्न में देखा था। वह देखो, हमारी ही ओर आ रहे हैं। काशी पुरी के भक्तजन आज धन्य हो गए।

जनसमूह - ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय!

दिवोदास - महाप्रभो! जगद्गुरो!! आपकी इस अद्भुत लिङ्गोद्भव लीला के दर्शन से हम धन्य हो गए। जन्म-जन्मान्तर के पुण्यफल से ऐसा सम्भव हुआ। हम भक्तजनों की सादर प्रणति स्वीकार करें जगद्गुरो! हमारा उद्धार करें। भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं, हम पर आपका अनुग्रह है तो अपने अवतार का हेतु बतलाने की कृपा करें भक्तवत्सल!

विश्वकर्णाचार्य - प्रजावत्सल राजन्! परमेश्वर शिव की आज्ञा से वर वीरशैव धर्म की स्थापना के लिए पवित्र नाम विश्वकर्णाचार्य के रूप में हमारा अवतार

हुआ है।

दिवोदास - *(साश्चर्य)* वीरशैव धर्म?

विश्वकर्णाचार्य - हाँ वत्स, वीरशैव धर्म। यह विश्वधर्म होकर प्रकाशित होगा।

दिवोदास - *(करबद्ध होते हुए)* हे महामहिम! आप द्वारा संस्थापित होने वाले इस धर्म का लक्षण क्या है?

विश्वकर्णाचार्य - *(प्रसन्नतापूर्वक सौम्य भाव से, उपदेश की मुद्रा में)* आप सब ध्यान से सुनें। मुख में शिव पञ्चाक्षर महामंत्र, हृदय में ध्यान, शरीर पर लिङ्ग, भस्म और रुद्राक्ष धारण ही वीरशैव धर्म का मूल लक्षण है। वीरशैव कौन है? जो शिव और जीव की एकता का बोध कराये, दयापूर्वक विद्यादान करे, सभी प्राणियों का हितैषी हो, सबके प्रति मैत्रीभाव धारण करे, जिसका जीवन सदाचारमय हो, वह मनुष्य वीरशैव है। यह वीरशैव धर्म ही सारे संसार को सुख-शान्ति प्रदान करेगा। इस धर्म में मनुष्य मात्र का कल्याण निहित है। आप सब इस पवित्र धर्म को अपनायें। मनोयोग पूर्वक नित्य ही श्रद्धा सहित इष्टलिङ्गार्चन करें और लिङ्ग धारण करें। शिवज्ञान को चित्त में लायें। ऐसा करने से आप सबको भूतभावन भगवान् शिव का अनुग्रह प्राप्त होगा। यह भू-लोक कैलास बनेगा। हम शिवाद्वैत का प्रतिपादन करने वाले वीरशैव धर्म की प्रतिष्ठा हेतु ही अवतरित हुए हैं। आप सबका कल्याण हो, सुमङ्गल हो।

जनसमूह - *(समवेत स्वर में)* श्रीमद् जगद्गुरु विश्वकर्ण भगवान् की जय! विश्वकर्ण भगवान् की जय!! विश्वकर्ण भगवान् की जय!!!

दिवोदास - *(श्रद्धावनत होकर)* शिवतेजोमूर्ति महागुरु से विनम्र प्रार्थना है कि भगवन्! हमारी कुटिया में पधार कर उसे अपनी चरणरज से पवित्र कर हमें अनुगृहीत करने की कृपा करें। आपके कर-कमलों से लिङ्गदीक्षा पाकर अपना जीवन धन्य बनाना चाहता हूँ।

विश्वकर्णाचार्य - राजन् दिवोदास! आपका निमंत्रण हमें स्वीकार है। हम आपको अवश्य ही दीक्षा प्रदान करेंगे। दीक्षा के बिना मोक्ष-प्राप्ति नहीं होती।

दिवोदास - स्वागत है प्रभो! स्वागत है!! *(हर्षविभोर होकर)* कृपा कीजिए गुरो! दास पर कृपा कीजिए!! पधारिये-पधारिये!!

विश्वकर्णाचार्य - जैसी भगवान् शिव की इच्छा!

जनसमूह (हर्षविभोर होकर, समवेत स्वर में)—

श्री जगद्गुरु विश्वकर्ण महाराज की जय!

श्री जगद्गुरु विश्वकर्ण महाराज की जय!

श्री जगद्गुरु विश्वकर्ण महाराज की जय!

हर हर महादेव!!...

(मञ्च पर प्रकाश धीरे-धीरे मन्द होता है। परदा गिरता है।)

॥ पञ्चम दृश्य सम्पन्न ॥

***

षष्ठ दृश्य - 06

काशिराज का राजप्रासाद

(श्री जगद्गुरु विश्वकर्णाचार्य ऊँचे आसन पर विराजमान हैं। काशिराज दिवोदास महारानी के साथ श्री विश्वकर्ण महागुरु की पाद-पूजा (प्रक्षालन, कोमलवस्त्र से प्रोञ्छन, सुगन्धद्रव्य-पुष्पादि अर्पण) कर रहे हैं। राजपुरोहित पाद-पूजा के मंत्र का सस्वर उच्चारण कर रहे हैं-)

विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय
मयि पाद्यायै विराजो दोह इति।

विश्वकर्णाचार्य - राजन्! तुम्हारी यह विनयशीलता और भक्ति देखकर हम बहुत प्रसन्न हैं। यदि तुम्हारे मन में कोई सङ्कल्प हो, कोई इच्छा हो तो बताओ। वह प्रभुकृपा से पूरी होगी।

दिवोदास - प्रभो! प्रकाश बाहर न निकलने की स्थिति में मेरे जीवनदीप ने अपने ही घोसले में धुआँ भर दिया है। ऐसे समय में आपने यहाँ पधार कर अपने कृपा-कटाक्ष से मुझे कृतकृत्य कर दिया है। क्या अब भी मैं हाँथ बाँधकर मौन रहूँ? दीक्षा देकर मेरा उद्धार कीजिए प्रभो, मेरा उद्धार कीजिए।

विश्वकर्णाचार्य - *(हँस कर, सहज भाव से)* सब कुछ तो भगवान् शिव की इच्छा है- 'शक्तिपातं समालोक्य दीक्षया योजयेदमुम्।' जिन भक्तों पर भगवान् शिव का अनुग्रह होगा, वे दीक्षा के पात्र हैं। मुक्ति में प्रेम, भुक्ति से वैराग्य, शैवशास्त्रों में श्रद्धा, शिवभक्तों में भक्ति- ये सारे गुण तुम में हैं। अतः तुम दीक्षा के सर्वथा पात्र हो।

दिवोदास - *(आचार्य-चरणों में प्रणतिपूर्वक)* भगवन्! फिर विलम्ब क्यों? अनुग्रह कीजिए प्रभो!

विश्वकर्णाचार्य - हाँ, दीक्षा के लिए यह काल समुचित भी है। मैं तुम्हें दीक्षा दे रहा हूँ। भगवान् शिव तुम्हारा कल्याण करें। *(दीक्षा देकर, कान में*

मंत्रोपदेश करते हैं) (पुनः)- राजन्! आज तुम पवित्र हो गए। दीक्षासम्पन्न ही लिङ्गधारण, पूजन और मंत्राभ्यास का अधिकारी है। इस जन्म में अब शिवसान्निध्य प्राप्त कराने वाले वीरशैव तत्त्व का आचरण करते हुए परम पवित्र जीवन व्यतीत करो। पञ्चाकार-परायण, अष्टावरणनिष्ठ और षट्स्थल सम्पन्न बनो। इस राज्य की प्रजा में वीरशैव सिद्धान्त का प्रचार करो। यही भगवान् शिव की सच्ची आराधना है। इसी में तुम्हारा और तुम्हारी प्रजा का सर्वमङ्गल निहित है।

दिवोदास - गुरुदेव! आज मेरा जीवन धन्य हो गया। आपने अमृत वर्षा कर मुझे अमोघ संजीवनी प्रदान की है। आपके उपदेशों को मैं शिरोधार्य करता हूँ। मैं इसका अक्षरशः पालन करूँगा।

विश्वकर्णाचार्य - शुभमस्तु। कल्याणमस्तु।।

(मञ्च पर प्रकाश हल्का होकर धीरे-धीरे गायब हो जाता है। परदा गिरता है।)

।। षष्ठ दृश्य सम्पन्न ।।

***

सप्तम दृश्य - 07

(प्रातःकाल की वेला। पक्षियों का कलरव। हल्की (बूँदाबाँदी) वर्षा। मेघगर्जन और बिजली की चमक कड़क। मञ्च पर महर्षि दुर्वासा खड़े दिखाई देते हैं। एक शिष्य भयभीत सा (घबराया हुआ) दौड़कर आता है।)

शिष्य - गुरुदेव! गुरुदेव!! यह कैसी महाध्वनि है? पृथ्वी को कँपा देने वाली बिजली की कड़क! उधर देखिए, गुरुदेव! ईशान कोण में एक ज्योति दिखाई दे रही है।

दुर्वासा - *(कुछ विचार करते हुए)* डरो मत...। यह भगवान् शिव द्वारा अनुगृहीत महाफल है। वह ज्योति और कुछ नहीं, अपितु स्वयं गणनायक शिवगुरुवरेण्य विश्वकर्ण महाजगद्गुरु हैं। वह देखो, उनका दिव्य स्वरूप कैसा मनोहारी है। जटाधारी भगवत्पाद लिङ्गाङ्कित हैं, भस्म और रुद्राक्ष से विभूषित हैं, हाथ में बिल्वदण्ड धारण किये हैं। प्रकाशरूपी श्वेत हाथी पर सवार होकर गगन मार्ग से मनोवेग से पधार रहे हैं। यह महाध्वनि-मेघगर्जन और बिजली की कड़क उनके शुभागमन की सूचना दे रही है। वर्षा मानो अर्घ देकर उनका स्वागत कर रही है। लता-पादप मानो उनके चरणों का स्पर्श करने के लिये झुक रहे हैं। फूल अपनी सुगन्धि बाँट रहे हैं। भौंरों के कलगुञ्जार के व्याज से मानो सरस्वती वीणावादन कर स्वागत-संगीत प्रस्तुत कर रही है। वह देखो, वे महागुरु समीप आ गए। चलो, उनका स्वागत करें, उन्हें आश्रम में ले आएँ।

(मुनि दुर्वासा शिष्यों के साथ रंगमंच पर घूमकर नेपथ्य में चले जाते हैं। परदा गिरता है।)

आश्रम का दृश्य

(स्थान-स्थान पर प्रस्तर-निर्मित सुन्दर पीठासन। मध्य में एक उच्चासन जिस पर काला मृगचर्म बिछा है। अगल-बगल मोर कबूतर आदि पक्षी निर्भय विचरण कर रहे हैं। उपवन का मनोहर दृश्य दिखाई दे रहा है)

दुर्वासा - (श्री विश्वकर्णाचार्य को ऊँचे आसन पर बैठा कर) स्वागतम्! भवतां स्वागतम्!! धन्या वयं धन्यं चेदं तपोवनम्। अस्माकं तपो धन्यं धन्यं च जन्म। भगवन्, नमो नमः।

विश्वकर्णाचार्य - शुभमस्तु, मङ्गलमस्तु, कल्याणमस्तु।

दुर्वासा - जगद्वन्द्य गुरो! आपके दर्शनों से हमारा यह जन्म, यह कुल, यह तपोवन, यह पूजा-अर्चना-आराधना, जप-तप, सब सफल हुए।

विश्वकर्णाचार्य - परशिव-विशेषांश! अत्रि-अनसूया के पुत्र! मुनिश्रेष्ठ! सब कुशल मंगल तो है न! तपस्या निर्विघ्न तो है न! (हँसते हुए) तप के तेज से भस्म करने की शक्ति वाले तुमसे वैर का दुस्साहस भला कौन कर सकता है? तुम्हारी प्रदत्त पुष्पमाला को अपमानित करने वाले इन्द्र को शाप देकर उसकी सम्पत्ति को समुद्र में बहाया तुमने! मुनिवर! तुम्हारे द्वारा दिए गए मंत्र-बल से ही कुन्ती और माद्री ने पांडवों को जन्म दिया। शकुन्तला को शाप देकर तुमने विश्व को 'अतिथिदेवो भव' की चेतावनी दी। शापानुग्रह करने में समर्थ हे दुर्वासा, मुनि के प्रसाद को पूरे शरीर में लेप करने का निर्देश करने पर भी, पाद में लेप न करने के कारण, पाद में ही मृत्यु होने का शाप देकर तुमने संसार को दिखा दिया कि प्रसाद में वज्रकाय बनाने की शक्ति है। ऐसे परम सामर्थ्यशाली तुम्हें भला कैसी विघ्नबाधा हो सकती है?

दुर्वासा - हे गणाधीश्वर! आपसे अपने विषय में यह सब सुनकर मैं अत्यन्त लज्जित हो रहा हूँ। यह सब एक तपस्वी की शक्ति नहीं, कमजोरी है; प्रशंसा नहीं, निन्दा है। 'यतीनां कोपी चाण्डालः'- क्रोधी यति चाण्डाल होता है। यद्यपि मैंने तपस्या की है, किन्तु क्रोध को नहीं जीत सका हूँ। शास्त्रों में काम, क्रोध और लोभ को नरक का द्वार कहा गया है-

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।

सब कुछ जानते हुए भी मैं अभी तक क्रोध को नहीं ज़ीत सका हूँ। चाहे कोई कितना भी बड़ा तपस्वी हो, किन्तु सद्गुरु के अनुग्रह के बिना क्रोधादिकों को नहीं जीत सकता। अतः हे सद्गुरो! मुझ पर

अनुग्रह कीजिए, मुझे शिवदीक्षा प्रदान कीजिए। मुझे मुक्ति दिला दीजिए। भेदज्ञान और प्रतिकूल ज्ञान इन दोनों का मूल अज्ञान ही है और ये दोनों क्रोध के मूल हैं। इस अज्ञान को मिटाने के लिए शिवाद्वैत ज्ञान प्राप्त करना है। हे सर्वशक्तिसम्पन्न महागुरो! मुझे शिवाद्वैत-ज्ञान का उपदेश देने की कृपा कीजिए।

विश्वकर्णाचार्य - हे महर्षे! 'शिव एवात्मा'- यह पञ्चवर्ण महासूत्र है। बरगद के सूक्ष्म बीज में निहित विशाल वृक्ष के समान इसी एक सूत्र में सम्पूर्ण शिवाद्वैत सिद्धान्त सन्निहित है।

दुर्वासा - हे जगद्गुरो! इस सूत्र की व्याख्या करके इसका अर्थ सविस्तर समझाइए।

विश्वकर्णाचार्य - महामुने! आप तो सब जानते हैं किन्तु विश्व के कल्याण के लिए इसे आप मुझसे कहलवाना चाहते हैं। अच्छा, तो सुनिए। इस सूत्र का अर्थ है कि चराचर ब्रह्माण्ड के एकमात्र आत्मा शिव ही हैं। 'शिव' शब्द में चारों वेद सन्निहित है —

तस्मान्मुख्यतमं नाम 'शिव' इत्यक्षरद्वयम्।
एतन्नामावलम्बेन मंत्रः पञ्चाक्षरः स्मृतः।।

इसीलिए यह पञ्चवर्ण मंत्र सात कोटि मंत्रों में श्रेष्ठ माना गया है। अनादि अविद्या के कारण शिव का अंश जीव बन गया है जो निज कर्मों के फल से नाना योनियों में जन्म ले रहा है।

दुर्वासा- भगवन्! जीव नाना योनियों में कब तक घूमता रहता है?

विश्वकर्णाचार्य- महर्षे! आणव, मायीय और कर्म इन तीन मलों से युक्त जीव संसारी बनकर घूमता रहता है। पुण्य कर्मों के फल से उसमें भगवान् शिव, शास्त्र और गुरु में भक्ति का उदय होता है। तब वह श्रद्धापूर्वक सद्गुरु की शरण में जाता है-

स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिःश्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

तब सद्गुरु उसके तीनों मलों का नाश करने वाली, वेधा, मान्त्री और क्रिया-नामक त्रिविध दीक्षा देकर उसके स्थूल शरीर को इष्टलिङ्ग, सूक्ष्म शरीर को प्राणलिङ्ग और कारण शरीर को भावलिंङ्ग से सम्बद्ध कर देता है।

दुर्वासा- विश्वगुरो! ऐसा करने का प्रयोजन क्या है? क्या होता है इससे?

विश्वकर्णाचार्य- मुनिवर! श्रीगुरु के उपदेशानुसार, इन तीनों लिङ्गों का सन्धान बनाकर शिवयोगासक्त जीव अपनी स्थूल शक्ति को क्रमशः सूक्ष्म शक्ति में परिवर्तित कर लेता है। अतः जो अङ्गपदवाच्य है, वह लिङ्गपदवाच्य में परिवर्तित हो जाता है।

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तंगच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

इस मुण्डकश्रुति के अनुसार- नदियाँ जैसे अपने नामरूपको खोकर समुद्र का रूप धारण कर लेती हैं, इसी प्रकार शिवयोगी भी अपने माया-मल-कर्मों को छोड़कर अङ्गगुण के स्थान पर लिङ्गगुण रूप धारण कर लेता है।

दुर्वासा- जगद्गुरो! अङ्गरूप का लिङ्गरूप बनने के पश्चात् उसकी स्थिति में क्या परिवर्तन होता है।

विश्वकर्णाचार्य- अङ्ग का लिङ्गरूप बनना ही लिङ्गाङ्गसामरस्य है। इसे शिवाद्वैत कहते हैं। 'शिवोऽहम्' भावना से भगवान् शिव से सामरस्य स्थापित कर लेने पर सब कुछ शिवमय दिखाई देता है-मैं शिवरूप हूँ, सारा विश्व शिवरूप है, शिव के सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं।' शिवाद्वैत की प्राप्ति में भेदज्ञान, प्रतिकूल ज्ञान और अज्ञान-यह सब विनष्ट होकर स्वयमेव विलक्षण स्थिति प्राप्त हो जाती है। तब न किसी के साथ मित्रता और न किसी के साथ शत्रुता! हे महर्षे! इस प्रकार, रागद्वेषादि के नष्ट होने से, एक से प्रेम और दूसरे से घृणा की भावना नहीं रहेगी। काम-क्रोधादि अरिषड्वर्ग केवल तप से विनष्ट नहीं होते। उसके लिए शिवाद्वैत ही एकमात्र उपाय है। इस शिवाद्वैत ज्ञान को श्रवण, मनन और आराधना के साथ प्राप्त कीजिए। तभी आपका क्रोध नष्ट होगा। वृक्ष में आग लगने से उसके फूल-फल भी नष्ट हो जाते हैं। इसी तरह क्रोध से ज्ञान का फूल-फल नष्ट हो जाता है।

दुर्वासा- (हर्षोल्लसित होकर) अद्भुत! --- यह तो महान् दिव्य ज्ञान है!! भगवन् ! आपके श्रीमुख से निकले हुए परमशिवाद्वैत सिद्धान्त का श्रवण कर मैं धन्य हो गया। आपकी कृपादृष्टि के प्रभाव से मुझे आज शिवदृष्टि प्राप्त हो गयी। यह कैसा आश्चर्य? सब कुछ शिवरूप

दिखाई दे रहा है- 'यत्र यत्र मनो याति, तत्र तत्र शिवदर्शनम्।' सभी आत्मायें शिवरूपता को प्राप्त हो गयी हैं। न कोई अपना है और न कोई पराया। न कोई मित्र है और न कोई शत्रु। सब कुछ तो शिवमय हो गया है। हे महागुरो! आपके ज्ञानोपदेशामृतसेचन से मेरे अन्दर की क्रोधानल-ज्वाला शान्त हो गयी है। आज का यह धन्य दिवस, आज की यह पुण्य वेला मेरे जीवन में अविस्मरणीय है। धन्योऽहम्, शिवोऽहम्।हे प्रभो! मेरे लिए आदेश करें, मै लोकहित की कौन सी आपकी प्रिय सेवा कर अपने को कृतार्थ करूँ?

विश्वकर्णाचार्य- हे प्रशान्तमूर्ते दुर्वासामुने! आप यही मेरा प्रिय करें कि अपने लिए उपदिष्टपञ्चवर्णसूत्र की शिवाद्वैतसिद्धान्त के अनुसार वृत्ति लिखकर अपने शिष्यों द्वारा भूमण्डल में उसका प्रचार-प्रसार करायें। आपके द्वारा यही मेरी गुरुदक्षिणा भी है।

दुर्वासा- हे परमाचार्य जगद्गुरो! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। अवश्य ही आपका यह दीक्षित शिष्य इस कार्य को पूरा करेगा। आशीर्वाद दीजिए प्रभो!

विश्वकर्णाचार्य- तथास्तु। शुभमस्तु।।

सामूहिक स्वर- श्री जगद्गुरु विश्वकर्ण भगवान् की जय!

विश्वकर्ण भगवान् की जय!!

विश्वकर्ण भगवान् की जय!!! हर हर महादेव ---!

(मञ्च पर प्रकाश क्रमशः क्षीण होता है। परदा गिरता है।)

॥ सप्तम दृश्य सम्पन्न ॥

***

अष्टम दृश्य -08

पूर्व पीठिका

द्वापर युग की समाप्ति और पक्षियों की कर्कश ध्वनि के साथ कलियुग का आरम्भ। श्री काशी विश्वनाथ ज्योतिर्लिङ्ग से आकार ग्रहण कर भगवान् श्रीविश्वकर्णाचार्य ने अपने अमोघ नाम से अनन्त लीलायें की जिनसे द्वापर युग के इतिहास में उनका नाम अमर हो गया।

सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान नामक शिव के पञ्चमुखों से प्रकटित परशिव परमात्मा की आज्ञा के अनुसार भूलोक में धर्म की पुनः स्थापना के लिए, पृथ्वी के पुण्यफल में कलियुग के प्रारम्भ में कोल्लिपाकि श्री सोमेश्वरलिंङ्ग से श्रीरेवणाराध्य जी, श्रीशैल के श्रीमल्लिकार्जुनलिङ्ग से श्रीपण्डिताराध्य और श्रीकाशीविश्वनाथ ज्योतिर्लिङ्ग से श्री विश्वाराध्य जी प्रादुर्भूत हुए।

भगवान् शिव की आज्ञा से श्री काशीविश्वनाथ ज्योतिर्लिंङ्ग से उदित होकर श्रीविश्वाराध्य जी ने एक हजार एक सौ वर्षों तक लीलाएँ करते हुए भारत-भ्रमण किया। उन्होंने वीरशैव धर्म की पुनः स्थापना कर के तत्त्व का प्रचार किया। आकाशमार्ग से नयपाल (नेपाल), चरणाद्रि (चुनार), प्रयाग (इलाहाबाद) और गया जाकर वहाँ उन्होंने शाखापीठों (मठों) की स्थापना की। शिष्य कोटि में श्रेष्ठ श्रीमल्लिकार्जुन विश्वाराध्य शिवाचार्य जी को काशी के ज्ञानपीठ पर अभिषिक्त किया। इसी प्रकार, कुल मिलाकर इक्यावन (51) (उसी नाम से) पीठाधिपति बना कर भक्तजनों को ज्ञानामृत पिलाते रहे। इक्यावनवें पीठाधिपति जगद्गुरु श्रीमल्लिकार्जुन विश्वाराध्य शिवाचार्य के कार्यकाल में एक दिन—

(परदा उठते ही रङ्गमञ्च पर काशिराज श्री जयनन्द के आस्थान का दृश्य। सभासद और अधिकारी गण जय जयकार कर रहे हैं। महाराज जयनन्द प्रवेश करके सबका अभिवादन स्वीकार करते हुए सिंहासन पर विराजमान होते हैं।)

वन्दी-मागध- श्री महाराजाधिराज श्रीकाशीपुरवराधीश श्री सद्धर्मप्रतिपालक श्री-श्री-श्री महाराज जयनन्द भूपाल की जय हो, जय हो, जय हो।

मंत्री- महाराज ----

जयनन्द- हाँ-हाँ (मुख पर सहमति का भाव)

(मंत्री ताली बजाकर संङ्केत करता है और नर्तकियाँ आकर नृत्य प्रस्तुत करती हैं)

जयनन्द- मंत्री जी, इन नर्तकियों को उचित पुरस्कार देने के लिए कोषाधिकारी को निर्देश दें। हाँ, अब बताइए मंत्री जी, राज्य में सब कुशल मङ्गल तो है?

मंत्री- महाराज, आपकी कृपा से, कुशल प्रशासन से, प्रजाजन निश्चिन्त, निर्भीक और कुशली हैं। हमारा राज्य रामराज्य की ही भाँति मङ्गलमय है।

जयनन्द- हमें इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई। तथापि मंत्रीजी, मेरे मन में बहुत दिनों से एक अभिलाषा है।

मंत्री- आदेश दें प्रभो, क्या अभिलाषा है महाराजजी की!

जयनन्द- पूर्वजों की सद्‌गति के लिए किसी शुभ पर्व पर हम महा भूदान करना चाहते हैं। आज प्रातः मेरे मन में आया कि कल ही कार्तिक मास शुक्ल पक्ष की प्रबोधिनी एकादशी का पुण्य पर्व है। क्यों न इस शुभ पर्व पर हम समर्थ गुरु सार्वभौम को ऐसा भूदान करें जिससे हमारे पूर्वज सद्‌गति को प्राप्त हों।

मंत्री- महाराज, यह महादान आप किसे करना चाहते हैं?

जयनन्द- और भला किसे? काशीपुरी में सुविख्यात ज्ञानसिंहासन जंगमवाड़ी महामठ के अप्रतिम तपस्वी, गगनगामी, शापानुग्रहसमर्थ, लोककल्याणैकदक्ष जगद्‌गुरु श्रीमल्लिकार्जुन विश्वाराध्य भगवत्पाद जी को।

मंत्री- महाराज, अत्युत्तम है आपका यह शिवसङ्कल्प। मेरे मन में भी यह सद्भाव था। इस राज्य की राजधानी काशी महाक्षेत्र में जङ्गमवाड़ी मठ, नाम के अनुरूप विद्या का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया है। देश के विभिन्न भागों से आए हुए विद्यार्थियों का यह आश्रयस्थल है। यह सर्वधर्मसमन्वय का केन्द्रबिन्दु है। यहाँ अन्नसत्र और ज्ञानसत्र निरन्तर

चल रहे हैं। तीर्थयात्रियों के लिए भी यहाँ सर्वसुविधायुक्त व्यवस्था है। इसीलिए इस पुण्य क्षेत्र जङ्गमवाड़ी मठ को काशीवासी श्रद्धापूर्वक भूमण्डल का कैलास कहते हैं।

जयनन्द- मंत्रीजी, इस मठ के सम्बन्ध में आपसे इतना सब कुछ जानकर मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि यह संस्थान, हमारे सङ्कल्प के अनुरूप है और हर प्रकार से दान प्राप्त करने के लिए सर्वथा उचित पात्र है। कल प्रातः काल ही एकादशी के पुण्य पर्व पर शुभ वेला में इस पवित्र सङ्कल्प को पूरा करने की व्यवस्था कीजिए।

(हाथ जोड़कर) जैसी महाराज की आज्ञा!

(परदा गिरता है।)

॥ अष्टम दृश्य सम्पन्न ॥

***

नवम दृश्य -09

जङ्गमवाड़ी मठ

(मञ्च के मध्य पीठ पर श्रीमल्लिकार्जुन भगवत्पाद आसीन हैं। उनके एक ओर बैठे वेदपाठी सस्वर मंत्रपाठ कर रहे हैं। दूसरी ओर काशीपुरवराधीश महाराज श्री जयनन्द का प्रवेश होता है। महाराज के मञ्च पर आते ही नेपथ्य से समवेत स्वर में-)

"काशीपुरवराधीश महाराज श्री जयनन्द जी पधार रहे हैं---।"

सभी वेदपाठी- (अनुशासित रूप से खड़े होकर, संयत स्वर में)- हर हर महादेव शम्भो! हर हर महादेव!! हर हर महादेव!! (मन्त्रियों समेत महाराज साष्टाङ्ग प्रणतिपूर्वक श्रीमल्लिकार्जुन भगवत्पाद का अभिवादन करते हैं।)

श्रीमल्लिकार्जुन- स्वस्ति तेऽस्तु। पधारिए काशिराज! आपके राज्य में सब कुशल मङ्गल तो है न?

जयनन्द- हाँ, गुरुदेव! आपके अनुग्रह और शुभाशीष से सब सानन्द है।

श्रीमल्लिकार्जुन - यह तो अति प्रसन्नता की बात है। महाराज, आपके यहाँ आगमन का कोई विशेष कारण?

जयनन्द- बस, भगवन् 'साधूनां दर्शनं पुण्यम्।' आप जैसे तपोनिष्ठ महात्मा का दर्शन ही एक पुण्य विशेष है। आपके दर्शन की इच्छा हुई और चला आया।

श्रीमल्लिकार्जुन- 'राजा प्रत्यक्षदैवतः।' प्रजा को अपनी सन्तान मान कर चलने वाला राजा देवतुल्य होता है। महाराज, आप धर्म, न्याय और नीति के मार्ग पर चलते हुए प्रजापालन कर रहे हैं, यह इस देश का सौभाग्य है।

जयनन्द- गुरुदेव! आपका आशीर्वाद और अनुग्रह हम पर है तो कोई समस्या भला कैसे आ सकती है?

श्रीमल्लिकार्जुन- महाराज, ईश्वरेच्छा बलीयसी। भगवान् शिव आप पर प्रसन्न रहें- यही हमारी शुभकामना है।

जयनन्द- महागुरो! आपके दर्शन-श्रवण से मैं धन्य हो गया। एक विनती है प्रभो!

श्रीमल्लिकार्जुन- बताइए महाराज, क्या अभिलाषा है?

जयनन्द- आपके श्रीचरणों में भूदान के रूप में एक छोटी सी भेंट अर्पित करना चाहता हूँ। स्वीकार करने की कृपा करें। आज कार्तिक मास-शुक्लपक्ष की एकादशी है। इस शुभ पर्व पर हमारे पूर्वज दान करते रहे हैं। मैं भी इस परम्परा को आगे बढ़ाना चाहता हूँ। ज्ञानपीठ के लिए काशी क्षेत्र में कर्दमेश्वर मन्दिर से पूर्व में गङ्गा के तट तक की भूमि श्रीचरणों में अर्पित करना चाहता हूँ।

श्रीमल्लिकार्जुन- महाराज! आपका विचार तो अभिनन्दनीय है, किन्तु इतनी अधिक भूमि लेकर हम क्या करेंगे?

जयनन्द- गुरुदेव! इस भूमि की उपज से प्राप्त धन का श्रीपीठ के अन्नदान, विद्यालय आदि सत्कर्मों में विनियोग करें। इसके लिए दानपत्र तैयार है। कृपया स्वीकार कर हमें कृतार्थ करें।

श्रीमल्लिकार्जुन- एवमस्तु। जैसी भगवान् शिव की इच्छा।

जयनन्द- महामंत्री जी, दानपत्र पढ़कर सुनाइए।

महामंत्री- जो आज्ञा महाराज! (महामंत्री दानपत्र पढ़कर सुनाते हैं)।

श्रीमल्लिकार्जुन- (एक वेदज्ञ ब्राह्मण की ओर संङ्केत करके) शास्त्री जी, दानविधि का अनुष्ठान सम्पन्न कराइए।

(राजा की ओर दृष्टि डाल कर) महाराज, आप द्वारा श्रद्धापूर्वक दान की गयी यह भूमि मैं श्रीपीठ की ओर से सहर्ष स्वीकार करता हूँ। आपके पूर्वजों का कल्याण हो। भगवान् शिव उन्हें सद्गति प्रदान करें। आपका राज्य सुख-शान्ति-सम्पन्न हो। ज्ञान और धर्म का साम्राज्य बना रहे। शुभमस्तु, मङ्गलमस्तु।।

समवेत स्वर- जगद्गुरु श्रीमल्लिकार्जुन भगवत्पाद की जय।
काशीपुरवराधीश श्री जयनन्द महाराज की जय।।

हर-हर महादेव।।।

(मञ्च पर प्रकाश क्रमशः क्षीण होता है, परदा गिरता है।)

।। नवम दृश्य सम्पन्न ।।

***

दशम दृश्य -10

(नेपालनरेश श्रीविश्वमल्ल महाराज की सभा। राजपुरोहित समेत सभी सभासद यथास्थान आसीन हैं। नेपथ्य से महाराज के आगमन की सूचना-

"माननीय सभासदो! श्री-श्री-श्री महाराजाधिराज परमवीर विक्रमदेव श्री विश्वमल्ल जू महाराज पधार रहे हैं ---।"

सभी सभासद आदरपूर्वक अपने आसन से खड़े होते हैं। महाराज का आगमन होता है। महाराज अपने सिंहासन तक जाकर, सबका अभिवादन स्वीकार करके आसन ग्रहण करते हैं। सभी लोग आसन ग्रहण करते हैं।)

श्रीविश्वमल्ल- राजपुरोहित जी!

राजपुरोहित- आज्ञा महाराज!

श्रीविश्वमल्ल- आज मैंने एक विचित्र स्वप्न देखा है। दिव्यवेषधारी अनेक लोग मुझे घेर कर खड़े हैं। वे जोर-जोर से कराह रहे हैं। कोई अपना सिर पीट रहा है, कोई अपनी छाती पीट रहा है। वे सभी लोग मुझे घूर-घूर कर देख रहे हैं। मैं कुछ बोलना चाहता हूँ, किन्तु गले से आवाज नहीं निकल रही है। इस स्वप्न का क्या तात्पर्य है?

राजपुरोहित- (कुछ देर तक आँखें मूँद कर ध्यान करते हुए) महाराज, इस स्वप्न का अभिप्राय जो मेरी समझ में आया है, वह निवेदन करता हूँ। आगे स्वयं महाराज प्रमाण हैं। स्वप्न में आपको दिखाई पड़े सज्जन आपके पूर्वज हैं। वे अपने पुण्य कर्मों से अभी तक स्वर्ग में निवास कर रहे हैं, किन्तु उनके वंशजों ने उन्हें लक्ष्यकर अभी तक ऐसा कुछ नहीं किया कि उन्हें सद्गति प्राप्त हो। इसलिए वे निराश हैं, दुःखी हैं और अब इस विषय में आप से आशा कर रहे हैं।

श्रीविश्वमल्ल- तो इस विषय में क्या करना चाहिए?

राजपुरोहित- महाराज, यह राजवंश सदैव से सनातन धर्म का अनुयायी और पोषक रहा है। हम सभी भगवान् पशुपतिनाथ की छत्रच्छाया में निवास करते हैं। काशी इन भगवान् भूतभावन महेश्वर का नित्यलीलाधाम है।

आपको जाकर भगवान् विश्वनाथ का पूजन-अर्चन करना चाहिए और वहाँ उस ज्योतिर्लिङ्ग से प्रादुर्भूत परमवीरशैव धर्म की प्रतिष्ठा करने वाले महागुरु की परम्परा के इक्यावनवें पीठाधिपति जगद्गुरु श्रीमल्लिकार्जुन विश्वाराध्य महाराज को उस पीठ के निमित्त भूदान करना चाहिए,ताकि आपके पूर्वजों की सद्गति हो।

सभी सभासद- (एक स्वर में) राजपुरोहित ठीक कह रहे हैं महाराज! ऐसा ही होना चाहिए)

श्रीविश्वमल्ल- साधु-साधु। मुझे भी राजपुरोहित का समाधान उचित लगा। महामंत्री जी, काशी तीर्थयात्रा का प्रबन्ध कीजिए। इसकी पूर्वसूचना काशीस्थित नेपाल राज्यके तीर्थपुरोहित राजगुरु को अविलम्ब प्रेषित कीजिए।

महामंत्री - (सिर झुकाकर) जो आज्ञा महाराज।

श्रीविश्वमल्ल- अच्छा, आज की सभा यहीं स्थगित की जाती है।

(सभी सभासद उठते हैं और परदा गिरता है।)

॥ दशम दृश्य सम्पन्न ॥

***

एकादश दृश्य - 11

(जंगमवाड़ी मठ का दृश्य। मञ्च पर जगद्गुरु श्री मल्लिकार्जुन विश्वाराध्य महाराज पीठासीन विराजमान हैं। विद्यार्थी सस्वर वेदपाठ कर रहे हैं। मठ के एक सेवक का प्रवेश।)

सेवक- (दण्डवत् प्रणतिपूर्वक) महाराज! नेपालनरेश श्रीविश्वमल्ल जी अपने राजपुरोहित और काशीतीर्थपुरोहित के साथ मठ के द्वार पर पधारे हैं और भगवत्पाद के दर्शनों के अभिलाषी हैं।)

श्रीमल्लिकार्जुन - जाओ और उन्हें आदरपूर्वक ले आओ।

सेवक- जो आज्ञा महास्वामिन्! (निकल जाता है)

(मञ्च पर श्री विश्वमल्ल का विनीत वेष में प्रवेश। उनके साथ राजपुरोहित और तीर्थपुरोहित राजगुरु भी हैं। सभी दण्डवत् प्रणति करके खड़े होते हैं।)

श्रीमल्लिकार्जुन- राजन्! आपका कल्याण हो। विराजिए।

(सभी महागुरु के चरणों के पास नीचे ही बैठ जाते हैं)

राजगुरु- जगद्गुरो! नेपालनरेश श्री विश्वमल्ल जी महाराज अपने पूर्वजों की सद् गति हेतु इस जंगमवाड़ी मठ की सेवा में भूदान करना चाहते हैं। प्रभो, आप प्रसन्न हों। भूदान ग्रहण कर इन्हें अनुगृहीत करें।

श्रीमल्लिकार्जुन- राजन्! आपकी धर्मनिष्ठा से मैं अति प्रसन्न हुआ। नेपाल राजवंश का यह कुलव्रत है। आप यशस्वी हों। आपके राज्य में सुख, समृद्धि और शान्ति हो। आपका भूदान इस पीठ को स्वीकार है। आपके राज्य में स्थित भक्तपुर नामक पुण्यस्थल पर इस महामठ की एक शाखा जंगममठ के नाम से अवस्थित है। आप भक्तपुरस्थ जंगममठ के लिए भूदान कर शिलाशासन कराइए। आपका कल्याण हो।

श्रीविश्वमल्ल- (विश्वराध्य महागुरु के चरणों में शीश नवाते हुए) आपके इस अनुग्रह से मैं कृतकृत्य हुआ प्रभो! अब मुझे पूर्ण श्रद्धा है कि मेरे पूर्वजों को अवश्य ही आपके आशीर्वाद से सद्गति प्राप्त होगी। (नेपालनरेश पुरोहितों की सहायता से हाथ में गंगाजल, कुश, अक्षत और पुष्प लेकर भूदान का संङ्कल्प लेते हैं- तिथि ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी विक्रम संवत्सर 692)।

(महागुरु और नेपालनरेश-दोनों का जय-जयकार होता है।) (परदा गिरता है)

॥ एकादश दृश्य सम्पन्न ॥

***

द्वादश दृश्य -12

(पैदल और हाथी-घोड़ों पर सवार, तलवार-भालों से लैस मुगल सेना का काशी नगरी में बर्बर प्रवेश। चारों ओर भगदड़ और हाहाकार । चीख-पुकार, रोने-चिल्लाने की आवाजें... परमेश्वर, हे शिव, हे विश्वनाथ हमें बचाओ...बचाओ)

(मुगलसम्राट् औरंगजेब शाही अन्दाज में रङ्गमञ्च पर आता है।)

औरंगजेब- (चारों ओर शान से देखकर, क्रोधपूर्वक) जो सामने आए मार डालो, कत्ल कर दो, सिर काट कर फेंक दो। - विश्वनाथ हो या कोई नाथ. ..हुंः! मुझे उससे कुछ लेना देना नहीं। मुझे चाहिए सिर्फ खजाना - धन दौलत- सोना-चाँदी। मन्दिरों को ढहा दो-काफिरों के मकानों को जमींदोज कर दो। हमें किसी की परवाह नहीं। सब को रौंद डालो, आग लगा दो, खून की दरिया बहा दो-।

सेनापति – (गर्वपूर्वक) जहाँपनाह! हमारे कब्जे में बेशुमार दौलत आई है। बनारस की सारी दौलत ह़मारी दौलत हो गयी। हमने विश्वनाथ मन्दिर को लूट लिया, उसे ढहा दिया। जो भी मुकाबले में आया उसे वहीं कत्ल कर दिया गया।

औरंगजेब- (हँसता है) हा-हा-हा! वाह, बहुत खूब! ये हुई न बात !! हम भी यही चाहते हैं। यही हमारी दिली ख्वाहिश है। सारी दौलत दिल्ली भेज दो। हाँ, काफिरों के इस शहर में लूटने को कुछ बचा तो नहीं?

सेनापति- एक जगह अभी भी मुकम्मल बची हुई है जहाँपनाह! (सिर झुकाकर खड़ा रहता है)

औरंगजेब- (आगबबूला होकर, कड़कते हुए) अभी और एक जगह बची है! चुप क्यों हो नालायक? ऐसा कहते तुझे शर्म न आई? इतनी भारी फौज है हमारी! इतनी ताकत है हमारे पास !! इसके बावजूद अभी एक जगह मुकम्मल बची ही है? यह सरासर हमारी बेइज्जती है। अब हमें बताओ, कौन सी जगह है वह?

सेनापति- हुजूर, वह पुराना इल्म पढ़ाने का मदरसाई इलाका है। उसे यहाँ की अवाम ज्ञानसिंहासन कहती है। उसे जंगमवाड़ी महामठ के नाम से भी

लोग पुकारते हैं। भारी दौलत है वहाँ; लेकिन हमारी फौज तमाम कोशिश करने के बावजूद वहाँ कामयाब न हुई।

औरंगजेब- (आश्चर्य और क्रोध से) क्या बकते हो? हमारी फौज को कामयाबी नहीं मिली? अन्दर जाने में तकलीफ हो रही है! क्यों? मठ का दरवाजा इतना मजबूत है? क्या हमारे पास तोपें नहीं हैं? उड़ा क्यों नहीं दिया उस मठ को? बड़े-बड़े मन्दिरों को हमने पलक झपकते लूट लिया, मटियामेट कर दिया। औरंगजेब की शान में यह गुस्ताखी है। हम तुम्हें एक मौका और देते हैं। जाओ और जाकर उड़ा दो उस मठ को।

सेनापति- जहाँपनाह—क्या?—उस जंगमवाड़ी महामठ को-?

औरंगजेब- (ठठाकर हँसते हुए) जंगमवाड़ी महामठ? हा—हा—जंगमवाड़ी महामठ!!! कावा पहन कर बात-बात पर शिव-शिव बोलने वाले स्वामी का मठ!! अरे उस मठ को लूटने की ताकत औरंगजेब की फौज में नहीं है? वाह-वाह! यह कहते हुए तुम्हें शर्म न आई? और वह भी मेरे सामने !

सेनापति- जहाँपनाह, यह बात नहीं है। उस मठ का दरवाजा तोड़ने से हमें कोई अदृश्य शक्ति नाकाम कर देती है।

औरंगजेब- खामोश गुस्ताख! आगे एक लफ्ज भी हम नहीं सुनना चाहते। हुँः! कोई अनजान ताकत रोक रही है! कौन सी ताकत? नहीं— दुनिया में कोई ताकत ऐसी नहीं जो औरगंजेब को रोक सके। चलो, हम खुद भी चलते हैं। देखें, कौन सी ताकत हमें रोकती है? औरंगजेब हैं हम!

सेनापति- जहाँपनाह, इस मामले में कदम बढ़ाना -।

औरंगजेब- खामोश ! लगाम दो अपनी इस जुबान को। क्या तुम्हें नहीं मालूम कि औरंगजेब से बहस करने वाले का अंजाम क्या होता है? चलो, बहस मत करो। फौज को हुक्म दो। हम भी देखें कि कौन सी ताकत औरंगजेब का मुकाबला करती है ! बुजदिल नहीं हैं हम! लाशें बिछा देंगे, खून की दरिया बहा देंगे। फौलाद की दीवार भी हो तो चुटकी बजाते ढहा देंगे हम! चलो-

(फौज की हलचल, चीखपुकार, चीत्कार, हाहाकार की आवाजें)

॥ द्वादश दृश्य सम्पन्न ॥

***

त्रयोदश दृश्य - 13

(औरंगजेब के कदम बढ़ाते ही भयानक आवाज, हर ओर बिजली गिरने जैसा दृश्य। मुहँ से आग उगलती एक भयानक मूर्ति आगे आती है। औरंगजेब भय से काँप कर जमीन पर गिर पड़ता है। मन्त्री और सेनापति उसे उठाते है।)

औरंगजेब – (भय और आश्चर्य से) काली छाया—लाल-लाल आँखें - भयानक बुत—मुझे खा जायेगा। रोको उसे,बचाओ, बचाओ मुझे-। यह क्या? मैं ख्वाब तो नहीं देख रहा हूँ? नहीं-नहीं, यह ख्वाब नहीं, सच्चाई है। जिन्दगी में ऐसा खौफनाक वाकया हमने कभी नहीं देखा। मुझे मेरे किये की सजा मिल रही है। मैं ने क्या किया? लूटमार, बेरूखी, खूनखराबा, नाइंसाफी - हुँह! वह भी एक नहीं—हजारों और क्या खूब? –खुदा के नाम पर सारी दुनियाँ को हासिल करना चाह रहा था। खून बहाया, मन्दिर तोड़े, इमारतें ढहाई। यह क्या? खून से लथपथ लोग-लाशें-खून का दरिया! हटो, हटो मेरी नजरों के सामने से-। अरे यह क्या? सिर पर भारी वजन! (अपना सिर झकझोर कर) मैं कोई ख्वाब तो नहीं देख रहा? पागल तो नहीं हो गया? नहीं-नहीं, मैं बिल्कुल दुरुस्त हूँ। अपने होशो हवास में हूँ। मैंने गुनाह किए हैं। खुदा के पाक नाम पर गुस्ताखी की है। हाँ-हाँ, मैं वाकई गुनहगार हूँ। मैं अब गुनाहों को धोना चाहता हूँ । मैं परवरदिगार की पनाह चाहता हूँ। हाँ, पनाह चाहता हूँ।

(मन्त्री और सेनापति खामोश एक दूसरे को साभिप्राय देखते हैं)

औरंगजेब- (पुनः) देखो-देखो, सच्चाई मुझे बुला रही हैं। सारी दुनियाँ एक है। हम सब खुदा की औलाद हैं, एक हैं। हिन्दू-मुसलमाँ एक है। ईश्वर-अल्लाह एक है। सब भाई-भाई हैं। कोई किसी का दुश्मन नहीं। कोई दुश्मनी नहीं। हम एक हैं—एक हैं—सब एक हैं—हा—हा— (जोरों से हँसता है)।

मंत्री – (अधीर होते हुए)-रहम खाइए जहाँपनाह, रहम खाइए। खुदा के वास्ते, अपने को काबू में रखिए। यह जगह खास पाक जगह है।

जुल्म से, कहर से इंसान शैतान बन जाता है। शैतान को आबरू-बेआबरू में कोई फर्क नजर नहीं आता। यह जंगमवाड़ी मठ अन्धों को आँखें देता है। भटके हुए को सही रास्ता दिखाता है। यह इल्म का,ज्ञान का धर्मपीठ है,सिद्धपीठ है।

औरंगजेब- (अफसोस जाहिर करते हुए)बर्खुरदार, सही फरमा रहे हो। वाकई यह पाक जगह है, खुदा की बस्ती है।

मन्त्री- जहाँपनाह, हमारे बुजुर्ग इस मठ के आलादर्जे के खिदमतगार रहे हैं।

औरंगजेब- मतलब? मैं कुछ समझा नहीं-।

मन्त्री- बताता हूँ हुजूर! मैं एक फेहरिश्त हुजूर की खिदमत में पेश कर रहा हूँ। बादशाह हुमायूँ ने 1430 ई. में इस जंगमवाड़ी मठ को जमीन बख्शी थी। फिर बादशाह अकबर ने इस मठ को 1474 ई.में तीन सौ बीघा जमीन दी थी। 1616 ई. में शाहंशाह जहाँगीर ने एकसौ अठहत्तर बीघा जमीन दी थी और अन्नदान पत्र भी लिखा था। इसी तरह 1630 ई. में बादशाह शाहजहाँ ने भी इस मठ की खिदमत में दो सौ अठहत्तर बीघे जमीन बख्शीश की थी,क्योंकि इस मठ के दरवाजे हरेक के लिए खुले हैं। यहाँ जात-पाँत का भेदभाव नहीं है। यहाँ विद्या और अन्न का दान हमेशा चलता रहता है। सबका मालिक, सबका रखवाला एक है।

औरंगजेब- वाह!-तारीफ-ए-मुकुल्लुम !! हिन्दू-मुसलमाँ एक है। अल्लाह का ही नाम ईश्वर है। यह मठ वाकई अल्लाह का घर है। सारे मजहब एक हैं। मजहब आपस में बैर रखना नहीं सिखाता। मैं मजहब का इल्म भूल गया था। भटक गया था सच्ची राह से। मैं अन्धा शैतान बन गया था। आज के बाद अब कोई मन्दिर नहीं ढहेगा, कोई हिन्दू कत्ल नहीं होगा। इंसानियत ही सबका मजहब है। (मन्त्री की ओर देखकर) बर्खुरदार, आज ही जमीन का बख्शीशनामा लिखवाइए। इस मठ के स्वामी की खिदमत में हम खुद-ब-खुद पेश करेंगे। इस जमीन की आई उपज से मुसाफिरों, गरीबों और बेसहारों के खाने-ठहरने का मुकम्मल इन्तजाम हो। पढ़ने वालों, इल्म सीखने वालों, खुदाई खिदमतगारों के लिए खैरात का बन्दोबस्त हो। यह हमारा हुक्म है।

मन्त्री- आज ही बख्शीशनामा तैयार किया जायेगा जहाँपनाह!

औरंगजेब- ठीक है। ये पता करो कि महास्वामी से मिलने की इजाजत है? हम उनसे मुलाकात करना चाहते हैं।

मन्त्री- हुजूर, इसका इन्तजाम किया जायेगा।

(परदा गिरता है।)

॥ त्रयोदश दृश्य सम्पन्न ॥

***

चतुर्दश दृश्य-14

(ज्ञानसिंहासन पर जगद्गुरु श्रीमल्लिकार्जुन विश्वाराध्य शिवाचार्य भगवत्पाद विराजमान हैं। शिष्यसमूह समवेत स्वर में यथाविधि वेदपाठ कर रहे हैं। कुछ भक्तजन यथोचित वेष में महागुरु के चरणों में हाथ जोड़े बैठे हैं। मञ्च प्रकाश की छटा से जगमगा रहा है। सेवक आकर महागुरु को सादर अभिवादन करके निवेदन करता है-)

सेवक - महागुरो! मठ के द्वार पर काशी में कहर बरसाने वाला दिल्ली का मुगल बादशाह औरंगजेब अपने कुछ दरबारियों के साथ आया है और आपसे मिलने की आज्ञा चाहता है।

श्रीमल्लिकार्जुन- ठीक है, दरबारियों के साथ उसे लिवा आओ। जाओ संकेतपूर्वक उसे यहाँ ले आओ।

सेवक- (सिर झुकाकर) जैसी आज्ञा महाप्रभो!

(सेवक जाता है, तदनन्तर उसके साथ औरंगजेब और उसके साथियों का प्रवेश। औरंगजेब भय और शङ्कापूर्वक कदम बढ़ाते हुए चारों ओर देखता है। मञ्च पर विराजमान श्रीमल्लिकार्जुन भगवत्पाद के समक्ष पहुँच कर अभिवादन करके फल-फूल अर्पित करता है और सभी हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं।)

श्रीमल्लिकार्जुन- (करुणा प्रदर्शित करते हुए) मुगल बादशाह! अहंकार मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है और जब वह धर्मोन्माद के साथ मिल जाता है, तब और भी घातक हो जाता है। सभी का धर्म एक है। वह है विश्वधर्म, मानवधर्म। धर्म की असलियत जाने बिना अविवेकान्ध मनुष्य क्या क्या अनर्थ नहीं कर डालते, जैसा कि अभी तुम कर रहे थे। अगर धर्म की कल्पना तुम एक बरगद के पेड़ के रूप में कर सको तो पाओगे कि उसके विशाल तने से ऊपर अनेक डालियाँ हैं। दुनियाँ भर के तमाम पन्थ इन्हीं डालियों के समान हैं। यह धर्मवृक्ष मानवता की धरती पर खड़ा है। उन सारी डालियों से बरोहें निकलकर इसी धरती में आकर धँसती हैं और इस विशाल वृक्ष के लिए तने के रूप में

आधार बन जाती हैं। इसलिए धर्म एक ही है और ये सारे पंथ उसी के अंगभूत हैं। जो ऐसा मानता है, वही सच्चा आदमी है।

औरंगजेब – (हाथ जोड़कर सिर नीचा किए हुए) हुजूर, मैं मजहब का इल्म नहीं जानता था। आँखे होने पर भी मैं अन्धा था। कल की घटना ने मेरी आँखें खोल दीं। मेरे जुल्म को मुआफ कीजिए। मैं भटक गया था। मुझ पर मेहरबानी कीजिए। कल मैंने कसम खाई है कि मजहब के नाम पर अब कोई खूनखराबा नहीं होगा और न ही कोई मन्दिर तोड़ा जायेगा। मेरी बातों का यकीन कीजिए। मैं इस मठ की खिदमत में जमीन का एक टुकड़ा तोहफे के रूप में पेश करना चाहता हूँ। स्वामीजी, उसे मेहरबानी करके कुबूल फरमाइए। आपका मुझ पर बहुत एहसान होगा। खुदा के वास्ते, अब मुझ पर रहम कीजिए। वाकई मैं कुसूरवार हूँ।

श्रीमल्लिकार्जुन- बादशाह, तुम्हारे जुल्म क्षमा योग्य तो नहीं हैं, लेकिन हमारा धर्म बड़ा उदार है। अगर ह्रदय से कोई अपने पापों, अपराधों को स्वीकार कर लेता है, प्रायश्चित्त करता है, तो भगवान् उसे क्षमा कर देता है। यद्यपि इतिहास तुमहारी इस नफरत की दास्तान को कलमबन्द करके ही रहेगा फिर भी हम तुम्हारे लिए भगवान् से प्रार्थना करेंगे कि उसने जो तुम्हें अब सद्बुद्धि दी है, उसे बनाये रखे। जाओ, तुम्हारी नेकनीयती पर हमें भरोसा है।

(औरंगजेब सिर झुकाता है और महास्वामी के चरणों में दानपत्र समर्पित करता है।)

(परदा गिरता है)

॥ चतुर्दश दृश्य सम्पन्न ॥

***

पञ्चदश दृश्य- 15

(श्वेत वस्त्र धारण किए, सिर पर सफेद पगड़ी और माथे पर श्वेत चन्दन से सुशोभित- गौर वर्ण, प्रौढावस्था के पं. मदनमोहन मालवीय मञ्च पर बैठे हैं (मसनद के सहारे)। उनके पास खद्दर वस्त्रधारी कुछ लोग बैठे हैं और बड़े ध्यान से मालवीय जी की बातें सुन रहे हैं।)

पं. मदनमोहन मालवीय- महात्मा जी के नेतृत्व में भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई जिस तरह से लड़ी जा रही है, उससे मुझे दिखाई पड़ता है कि थोड़े ही दिनों में हम स्वाधीन हो जायेंगे। इसके बाद हमें इस देश के पुनर्निर्माण और पुनर्जागरण की आन्तिरिक लड़ाई लड़नी होगी। गरीबी, अशिक्षा, अन्धविश्वास, बेरोजगारी आदि मिटाने के लिए हमें भगीरथ प्रयत्न करना होगा। हमारे नौजवान अभी से विदेशी संस्कृति की चकाचौंध से आकर्षित दिखाई देते हैं और हर समर्थ युवक चाहता है कि वह योरोप जाये। हमें अपनी संस्कृति और धर्म की रक्षा का उपाय भी करना होगा।

सभी लोग - (एक स्वर से) हाँ-हाँ, यह तो बहुत जरूरी है।

पं. मदनमोहन मालवीय- मेरे मन में एक विचार है। काशी से प्रयाग के बीच गंगाजी के किनारे-किनारे प्राचीन गुरुकुल के आदर्श पर शिक्षासंकुलों की स्थापना की जाय और यह कार्य सबके सहयोग से हो। इसके लिए मैं पूरे भारत की जनता से घूम-घूम कर दान माँगने के लिए तैयार हूँ। इन शिक्षा-संकुलों में प्राचीन भारतीय पद्धति से शिक्षा देने के साथ ही आधुनिकतम विषयों के पठन-पाठन की भी व्यवस्था की जाय, ताकि हम अपने देश के युवकों को अपने देश में ही पूरी और उत्तम शिक्षा दे सकें।

सभी लोग - (एक स्वर से) यह तो अत्युत्तम संकल्प है।

पं. मदनमोहन मालवीय- तो अच्छे काम में देर नहीं करनी चाहिए। इसका प्रारम्भ हम काशी से ही करेंगे। काशी में वह स्थान हमने घूम कर अच्छी तरह देख लिया है। नगवा के दक्षिण-पश्चिम की जमीन हमारे लिए अत्यन्त उपयुक्त है। दक्षिण और पूर्व में गंगाजी हैं। पश्चिम में कर्दमेश्वर और उत्तर में अस्सी नदी। मैं काशीनरेश से मिलकर उनसे यह जमीन प्राप्त कर लूँगा- ऐसा मेरा पूरा विश्वास है।

सभी लोग- (एक स्वर से) बहुत अच्छा! हम लोग भी आपके साथ चलेंगे।

पं. मदनमोहन मालवीय- ठीक है। कल प्रातःकाल हम सभी रामनगर दुर्ग चलकर महाराज से निवेदन करते हैं।

(प्रकाश मन्द होता है और परदा गिरता है।)

पुनः अगले दिन

(रामनगर दुर्ग का दृश्य। महाराज प्रभुनारायण सिंह अपनी राजसभा में विराजमान हैं। द्वारपाल उन्हें मालवीयजी के आने की सूचना देता है। महाराज स्वयं द्वार तक आकर मालवीयजी की अगवानी करते हैं और साथियों समेत उन्हें मन्त्रणाकक्ष में ले जाते हैं।)

महाराज प्रभुनारायण सिंह- मेरे धन्य भाग्य जो आप यहाँ पधारे। आप जैसे विद्वान् और तेजस्वी ब्राह्मणों से ही सनातन धर्म की मर्यादा बनी हुई है। किस प्रयोजन से आपने दर्शन देने की कृपा की?

पं. मदनमोहन मालवीय- महाराज! आप तो बड़े धर्मात्मा और उदार दानी हैं। हमने काशी में गंगातट पर एक विशाल शिक्षासंकुल के निर्माण का संकल्प किया है। उसमें आपका सहयोग चाहिए।

महाराज प्रभुनारायण सिंह- आज्ञा करें देवता, मेरे योग्य क्या सेवा है?

पं. मदनमोहन मालवीय- नगवा से पश्चिम-दक्षिण जो आपकी जमीन है, उसमें सत्रह गाँव बसे हैं। हमारे शिक्षासंकुल के लिए वह पूरी

जमीन चाहिए। इस शिक्षासंकुल का नाम 'काशी विश्वविद्यालय' होगा और यह विश्व में अपने तरह का अद्वितीय विश्वविद्यालय होगा।

महाराज प्रभुनारायण सिंह - पण्डित जी, वह जमीन लेने से आपका कार्य सिद्ध हो तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। इस पुण्य कार्य में इस राजवंश का भी यह तुच्छ सहयोग विश्वविद्यालय की स्थापना में कीर्तिशाली हो जायेगा। (प्रधानमंत्री की ओर देखकर) प्रधान जी! तनिक वहाँ का अभिलेख निकलवाइए और देखिए कि उसका रकबा कितना है और काश्त कैसी है।

प्रधानमंत्री - जी, महाराज। (मन्त्री भूमि सम्बन्धी अभिलेख मंगवाते हैं और अभिलेख देखकर) महाराज, कर्दमेश्वर महादेव से पूरब गंगा जी तक की सारी जमीन पहले ही दान दी जा चुकी है। उस पर काशी राज्य का कोई अधिकार नहीं है। सन् 574 ई. कार्तिक शुक्ल एकादशी को काशिराज श्री जयनन्द जू देव महाराज ने उस भूमि को जंगमवाड़ी मठ को दान देकर दानपत्र लिख दिया है। वह दानपत्र जंगमवाड़ी मठ के 51वें पीठाधीश्वर महास्वामी को समर्पित है।

महाराज प्रभुनारायण सिंह- पण्डित जी, जब वह जमीन हमारे पूर्वज महाराज ने जंगमवाड़ी मठ को दान दे दी है, तब उस पर हमारा अधिकार ही नहीं है। आप कृपा कर मठ के वर्तमान पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशिवलिङ्ग शिवाचार्य महास्वामी की सेवा में पधारिए। भगवान् विश्वनाथ चाहेंगे तो महास्वामी का शुभाशीर्वाद अवश्य मिलेगा। आपकी कार्यसिद्धि होगी।

पं. मदनमोहन मालवीय- जैसी शिव इच्छा। इधर से सीधे महास्वामी भगवत्पाद की सेवा में चलते हैं। अच्छा, महाराज! जाने की आज्ञा दीजिए। अब आप से कोई दूसरा सहयोग लूँगा।

(महाराज समेत सभी लोग खड़े होते हैं और परस्पर अभिवादन करते हैं। परदा गिरता है।)

॥ पञ्चदश दृश्य सम्पन्न ॥

***

षोडश दृश्य - 16

(जंगमवाड़ी मठ का दृश्य। जगद्‌गुरु श्रीशिवलिङ्ग शिवाचार्य भगवत्पाद मञ्च के मध्य पीठासन पर विराजमान हैं। भक्तगण उनकी पूजा-सपर्या में लगे हैं। नेपथ्य से निरन्तर वेदपाठ की हलकी ध्वनि आ रही है। पण्डित मदनमोहन मालवीय का अपने सहयोगियों के साथ प्रवेश। सभी लोग अभिवादन करके खड़े होते हैं।)

पं. मदनमोहन मालवीय- (प्रणाम करते हुए) भगवन्! मैं आपका सामान्य सेवक मदनमोहन मालवीय हूँ। एक प्रयोजनविशेष से आपके दर्शनार्थ उपस्थित हुआ हूँ।

श्रीजगद्‌गुरु- मालवीय जी, आपका कल्याण हो। आपका यश मैंने सुना है। आज आपसे मिल कर मुझे अतीव प्रसन्नता है। बताइए, वह प्रयोजन क्या है?

पं. मदनमोहन मालवीय- भगवन्! भगवान् विश्वनाथ की प्रेरणा से मैंने काशी में एक विश्वविद्यालय की स्थापना का सङ्कल्प लिया है। यदि आपका आशीर्वाद प्राप्त हो जाय तो कार्य आगे बढ़े।

श्रीजगद्‌गुरु- हाँ-हाँ, क्यों नहीं? मुझसे जो भी सहयोग इस पवित्र कार्य में हो सके, मैं सहर्ष तैयार हूँ।

पं. मदनमोहन मालवीय- भगवन्! विश्वविद्यालय के लिए मैंने अस्सी नदी के दक्षिण, कन्दवा और गंगा जी के बीच की भूमि देखी है। वह मुझे उपयुक्त लगी। उसे प्राप्त करने के लिए मैं काशीनरेश श्री प्रभुनारायण सिंह जी की सेवा में उपस्थित हुआ। वहाँ मुझे ज्ञात हुआ कि उनके पूर्वज महाराज जयनन्ददेव ने वह जमीन सन् 574 ई. में जंगमवाड़ी मठ को दान दे दी है। अब उस पर आपका स्वामित्व है। इसीलिए मैं आपकी सेवा में आया हूँ। महाराज इस विश्वविद्यालय की स्थापना से न केवल काशी, अपितु पूरे भारतवर्ष का कल्याण होगा। बस, आपकी कृपा और आशीष चाहिए महाराज!

श्रीजगद्गुरु- पण्डित जी! वह जमीन तो आपने देखी है। बड़ी उपजाऊ है और उसमें कई गाँव बसे हैं। आपको जितनी भूमि की आवश्यकता हो, घेर कर निशान लगा दीजिए। यह मठ उतनी जमीन विश्वविद्यालय के निर्माण हेतु प्रदान कर देगा। हाँ, इस सम्बन्ध में हमारी दो बातें स्वीकार करनी होंगी। पहली तो यह कि जितनी आबादी वहाँ से निर्वासित होगी, उसे अपनी परिधि से बाहर बसने का खर्चा देना होगा और हर परिवार पीछे एक जन को यथायोग्य जीविका विश्वविद्यालय में देनी होगी। दूसरी बात यह कि इस विश्वविद्यालय का नाम 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' होगा।

पं. मदनमोहन मालवीय- (हाथ जोड़कर) आपकी दोनों बातें शिरोधार्य हैं। अब आशीर्वाद दीजिए भगवन्! इस सेवक का संकल्प पूरा हो।

श्रीजगद्गुरु- कल्याणमस्तु! मङ्गलमस्तु। शिवास्ते पन्थानः सन्तु।।

(हर-हर महादेव के जयघोष के साथ परदा गिरता है)

(नेपथ्य से-)

कन्नडभाषया बद्धं रुद्रप्पाकृतरूपकम्।
नवं कलेवरं दत्तं प्रभुनाथद्विवेदिना।।

।। षोडश दृश्य सम्पन्न ।।

'विश्वज्योति विश्वाराध्य'

नामक एकाङ्की रूपक पूर्ण।

***





।। ॐ नमः शिवाय ।।

विश्वज्योति विश्वाराध्य

'काव्येषु नाटकं रम्यम्' काव्यों में नाटक रमणीय होता है। वस्तुतः कविकर्म सामान्य रूप से दो प्रकार का होता है— दृश्य और श्रव्य। श्रव्य में दृश्यत्व नहीं होता किन्तु दृश्य में श्रव्यत्व होता है। यहाँ कारण है कि श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य सहृदयों को झटिति आनन्द प्रदान करने से अधिक रमणीय सिद्ध होता है। आचार्य भरत ने नाटक को सर्वजन के लिए 'एकं समाराधनम्' कहा है और अद्वितीय नाट्यशिल्पी महाकवि कालिदास ने इसे 'चाक्षुषु क्रतु' की अभिख्या प्रदान की है।

प्रस्तुत 'विश्वज्योति विश्वाराध्य' एकाङ्की नाटक मूल कन्नड कृति का हिन्दी अनुवाद है। अनुवाद डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी एक योग्य प्राध्यापक होने के साथ-साथ संस्कृत और हिन्दी के समर्थ साहित्यकार हैं। उन्होंने इस लघु नाटक का अतीव ललित और भावपूर्ण अनुवाद किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने पूज्य महास्वामीजी की प्रेरणा तथा सत्परामर्श से मूल नाटक का परिष्कार एवं कई नवीन दृश्यों और वृत्तों की योजना भी की है। इससे यह अनूदित नाट्य कृति मूल की अपेक्षा चारुतर और ग्राह्यतर हो गयी है।

नाटक की मूल कथावस्तु प्रसिद्ध वीरशैवसम्प्रदाय तथा काशीस्थ जङ्गमवाड़ी मठ पर केन्द्रित है। इसके प्रणयन का उद्देश्य वीरशैव धर्म की पवित्र मूल भावना तथा जङ्गमवाड़ी मठ की जनकल्याणकारी प्रवृत्तियों का कान्तासम्मित उपदेश करना है। साथ ही, इसके कथानक से कतिपय ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक तथ्यों का नूतनोद्घाटन भी है। यथा— मठ-मन्दिरों के ध्वस्तीकरण में औरङ्गजेब की पराजय तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यायल की स्थापना में भूमिदान।

पुरुष पात्र प्रधान यह एकाङ्की नाटक सर्वथा अभिनेय है। दृश्य योजना और संवादों की प्रभावोत्पादकता के कारण यह सहृदय प्रेक्षकों का परितोष करने में समर्थ है। अनुपम पदशय्या तथा अर्थगाम्भीर्य इसकी साहित्यिकता में हृद्यानवद्य रसायन घोल रहे हैं।

निष्कर्षतः यह नाटक परमश्रद्धेय श्री 1008 जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी का अमोघ अलौकिक सारस्वत आशीर्वाद है।

ॐ नमः शिवाय।

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

शैव भारती शोध प्रतिष्ठान

डी.३५/७७, जंगमवाडीमठ, वाराणसी - २२१००१

ISBN : 978-93-82639-12-1

Rs. 100